कारागार

ऊर्मिला शास्त्री

H
813.3
Sh 24 K
H
813.3
Sh 24 K

कारागार

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

कारागार

ऊर्मिला शास्त्री

साहित्य अकादेमी

Karagar by Urmila Shastri in Hindi, Sahitya Akademi, New Delhi (1998), Rs.45

© साहित्य अकादेमी

Library IIAS, Shimla
H 813.3 Sh 24 K
00094248

प्रथम साहित्य अकादेमी संस्करण 1998

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय :
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली-110 001

बिक्री कार्यालय :
स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली-110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल,
23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड,
कलकत्ता-700 053

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, मुम्बई-400 014

304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट,
चेन्नई 600 018

ए डी ए रंगमन्दिर, 109, जे.सी. मार्ग,
बंगलौर-560 002

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 94248
Date 7-2-2000
SIMLA

ISBN 81-260-0440-1

मूल्य : पैंतालीस रुपये

शब्द संयोजन : सविता प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110 032
मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशकीय

श्रीमती ऊर्मिला देवी शास्त्री लिखित *कारागार* एक ऐसी-कृति है जो भारत-स्वातंत्र्य यादगार संग्राम में अपना सर्वस्व निछावर करने वाली महिला के उत्कृष्ट योगदान से समृद्ध है। इसमें एक खाते-पीते परिवार की युवा क्रांति-सेनानी के महात्मा गाँधी द्वारा छेड़े गये स्वतन्त्रता संग्राम के पथ पर बढ़ने के आह्वान पर घर छोड़ने और क्रान्ति के अग्नि-पथ पर चलते हुए तमाम कठनाईयों को झेलने और अन्त में कारा यंत्रणा से जुड़ी त्रासदी को हँसते हुए गले लगाने का एक अद्‌भुत आनंद भी निहित है। जीवन के कटुतम अनुभवों से अपने जीवन को धन्य करते हुए और उन्हें प्रामाणिक रूप से लिपिबद्ध करते हुए श्रीमती ऊर्मिला देवी शास्त्री ने अनुपम धैर्य का परिचय दिया है। बाद में उनका यह अनुभव पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुआ था और जिसकी भूमिका श्रीमती कस्तूर बा गाँधी ने लिखी थी। अब वह कृति अप्राप्य है। साहित्य अकादेमी को हर्ष है कि स्वतन्त्रता की पचासवीं वर्षगाँठ पर वह कृति पुनः प्रकाशित की जा रही है।

हमें आशा है कि हमारी वर्तमान पीढ़ी और विशेषकर महिलाएँ, श्रीमती ऊर्मिला शास्त्री द्वारा लिखित इस रचना से प्रेरणा ग्रहण करेंगी। जिन मूल्यों के लिये हमारे पुरखों ने अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दिया था, वे आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि जिन कुर्बानियों की बुनियाद पर हमें आज़ादी प्राप्त हुई है—उन्हें किसी कीमत पर भुलाया नहीं जा सकता। उसका स्मृति-तर्पण कर हमें स्वयं को कृतार्थ समझना चाहिए।

पूर्व-पुस्तक का प्रकाशित रूप जहाँ तक संभव है अविकृत रखा गया है। पाठक इसमें कारा जीवन के विचित्र अनुभवों के साथ लेखिका का अविचलित देश भक्ति के साथ ही तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा महिला-क़ैदियों को दी जा रही यातनाओं की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे।

अनुक्रम

प्रकाशकीय / 7

प्रस्तावना/कस्तूर बा. गाँधी / 9

प्रारम्भिक शब्द / 11

कारागार / 13

1.	जेल जाने से पहले	17
2.	जेल में पहला दिन	21
3.	अदालत का स्वांग	28
4.	सज़ा के बाद	32
5.	जेल जीवन की झलक	36
6.	संजीवनी सुधा	46
7.	खून के आँसू	49
8.	जेल में क़ैदियों से बर्ताव	57
9.	कीचड़ में कमल	62
10.	जेल में मेरी बीमारी	64
11.	प्रतिष्ठित अभ्यागत महिलाएँ	68
12.	एकान्त-जीवन का अन्त	72
13.	जेल का भोजन	76
14.	जेल में श्रेणी भेद	79
15.	जेल से मेरी मुक्ति	83

प्रस्तावना

(मूल गुजराती, हिन्दी लिपि में)

बहन ऊर्मिला देवी शास्त्री ने पोताना जेलना अनुभवोनुं आ सुन्दर पुस्तक लखवा माटे हूँ अभिनंदन आपुंछं। ते लान करीने पति साथे गृहस्थाश्रम चलाववानो भारे होंश साथे ताजांज मीरत आव्यां हतां, पण देशते खातर ए सुख छोड़ी तेमणे जेलने वहाली करी। आ लडतमां आखा हिन्दुस्तानी बहेनों से चारे तरफ एवोज त्याग, अेबीज देशभक्ति, अेवीज बहादुरी बतावी हिन्दुस्तानी स्त्री जाति ने शोभावी छे।

जेल जई आवेली बहनो ने आ चोपड़ी वांची पोताना जेलना दिवसो याद आब्या विना नहि रहे। घणी बहेनो ने बहेन ऊर्मिलानी माफक जेल जवावो लहवो नथी मण्यो। तेमने खरेखर एमनी ईर्षा आवशे। पणहूं जाणुं छुं के केसरियां साड़ी धारणकर नारी देशसेविकाओए दारूनां पीठांओ सामे के विदेशी कापड़नी दुकानो सामे शांत चौकी करना ओछां कष्ट सहयां न थी, ओछो बहादुरी बतावी थी। घणी देश सेविकाओअे ते जेलनां दुःखने पण झांखा पाड़े एटलुं सहन करी बताब्युं छे अेंनी हुं पोते साक्षी छुं।

बहेन ऊर्मिला देवीनुं लखाण एटलीं सरल अवे सुरस हिन्दी रांछे के मने ते समजतां जराये मुश्केली पड़ी न थी, अने ते मारे हुं तेमने खास धन्यवाद आपुंछू।

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती

कस्तूर बा. गाँधी

प्रस्तावना

(हिन्दी अनुवाद)

बहन ऊर्मिला देवी शास्त्री ने अपने जेल के अनुभवों की यह सुन्दर पुस्तक लिखी है उसके लिए मैं उनका अभिनन्दन करती हूँ। विवाह के बाद पति के साथ गृहस्थाश्रम व्यतीत करने की बड़ी उत्कट इच्छा को लेकर वे मेरठ आयी थीं। परन्तु देश की ख़ातिर उन्होंने उस सुख को छोड़कर जेल के सुख को सहर्ष स्वीकार किया। इस युद्ध में अखिल भारत की बहनों ने चारों तरफ़ ऐसा ही त्याग, ऐसी ही देश-भक्ति और ऐसी ही बहादुरी दिखाकर हिन्दुस्तान की स्त्री-जाति को गौरवान्वित किया है।

जो बहनें जेल जाकर आयी हैं, उन्हें इस पुस्तक को पढ़कर अपने जेल-जीवन के दिन पुनः स्मरण हो उठेंगे। जिन बहनों को बहन ऊर्मिला की भाँति जेल जाने का सौभाग्य मिला न होगा, वे इस बहन की ईर्ष्या करेंगी !! परन्तु मैं जानती हूँ कि केसरी साड़ी परिधान करने वाली देश सेविकाओं ने शराब की विदेशी कपड़े की दुकानों पर शान्त पहरे लगाने में कुछ कम कष्ट सहन नहीं किये, कुछ कम बहादुरी नहीं दिखायी। बहुतेरी देश सेविकाओं ने तो जेल के दुःखों को भी फीका करने वाले कठोर दुःख सहन कर दिखाये हैं और मैं स्वयं ऐसी बहनों की साक्षी हूँ।

बहन ऊर्मिला देवी ने ऐसी सरल और सरस हिन्दी में यह पुस्तक लिखी है कि मुझे उसे समझने में तनिक भी मुश्किल नहीं पड़ी, अतः मैं बहन ऊर्मिला को उसके लिए ख़ास बधाई देती हूँ।

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती

कस्तूर बा. गाँधी

प्रारम्भिक शब्द

हमारे जीवन में घटनाएँ होती हैं और चली जाती हैं, और तो कोई उन्हें देखता ही नहीं पर हम स्वयं भी उन्हें नहीं देखते, क्योंकि हमें देखने की फुर्सत नहीं होती, और हमारा ध्यान अनेक बाहरी घटनाओं में व्याकीर्ण रहता है। परन्तु जब मैं पिछले साल जेल की कोठरी में अकेली पड़ी हुई थी, जहाँ मेरा कोई साथी न था, तो उस समय मेरे पास सिवाय इसके कि मैं अपने जीवन की घटनाओं को देखूँ और उन पर विचार करूँ और कोई काम ही न था, इस प्रकार इस पुस्तक की सामग्री जेल-जीवन में ही संचित हो गयी, जिसे बाहर आकर मैंने पुस्तकाकार दे डाला।

बाहर आने पर भी पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित न हो सकी। मुझे जेल में ही बुखार रहने लगा था और बाहर आकर भी दो मास तक वह बना रहा। उसके बाद जब मैंने लाहौर से 'जन्मभूमि' नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन किया, उसी में कुछ दिन तक मेरा जेल जीवन का वृत्तान्त छपने लगा। उसे कई बंधुओं ने पसन्द किया। 'जन्मभूमि' से उद्धृत कर कलकत्ते के दैनिक पत्र विश्वमित्र ने भी जब मेरे जेल वृत्तान्त को छापा तो मेरा उत्साह बढ़ने लगा और मुझे यह ख्याल आया कि यदि इस वृत्तान्त को पुस्तकाकार छाप दिया जाय तो वह पढ़ने वालों के समय का दुरुपयोग न होगा। 'जन्मभूमि' पत्र के बन्द हो जाने से उसमें तो यह वृत्तान्त प्रकाशित न हो सका, परन्तु मुझे प्रसन्नता है कि आज मैं एक पुस्तक के रूप में अपनी बहन और भाइयों की सेवा में उसे प्रस्तुत कर रही हूँ।

पूज्य माता कस्तूरी बाई जी के दर्शन मुझे मेरठ में हुए थे, और तभी से मुझे उनके चरणों में विशेष श्रद्धा हो गयी थी। मैं उनकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने कृपापूर्वक इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया।

श्रद्धेय जमनालाल जी बजाज को मैंने यह पुस्तक समर्पण की है जो कि उचित ही था। लगभग चार साल हुए मैं देहरादून कन्या गुरुकुल में थी। वहाँ पर सौभाग्यवश

वे पधारे और उन्होंने अपना बहुत-सा अमूल्य समय मुझे खादी का महत्त्व समझाने में लगाया था। उस समय तो मैं अपनी हार मानने को तैयार न हुई, परन्तु उनका लगाया बीज मेरे हृदय में अंकुरित हुए बिना न रहा। वस्तुतः श्रीयुत बजाज जी के द्वारा ही मुझे सबसे प्रथम इस ओर प्रेरणा हुई थी।

इस पुस्तक के कतिपय भागों की द्वितीयावृति मेरे भाई स्नातक चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार ने करने की कृपा की है, उसके लिए मैं उनकी कृतज्ञ हूँ।

मेरठ

25.11.1931

—ऊर्मिला शास्त्री

कारागार

कारागार,
पाप पुण्य का एकाकार,
स्वर्ग नरक का अनुपम द्वार।
संसार के पापियों का, आतताइयों का स्थान,
विश्व के पुनीत पुण्यात्माओं का निवास—
विरोधाभास की अनुपम पहेली
जहाँ गीता के प्रवर्त्तक कृष्ण का जन्म हुआ
जहाँ गीता के भाष्यकार तिलक ने तप किया
जहाँ गैलीलियो[1] ने सत्य की पूजा की
जहाँ जॉन बनियन ने विश्वविख्यात ग्रन्थ[2] लिखा
जहाँ धर्म गुरु[3] बहा ने अपना जीवन बिताया
जो गाँधी की पुण्य गन्ध से सुगंधित हो गया
वह कारागार ! पुण्यागार !!

मनुष्य-समाज जिन पापियों के दुराचार पर लज्जित होता है उन्हें वह छिपाने के लिए

1 गैलीलियो यूरोप का प्रसिद्ध नक्षत्र-विज्ञान-वेत्ता था, जिसने सबसे पहले आकाश के ग्रहों-उपग्रहों को दूरवीक्षण यन्त्र से दखा था। उसके विचार बाइबिल के प्रतिकूल थे, इसलिए रोम के पोप ने उसे बुढ़ापे की अवस्था में जेल में डलवा दिया।

2 जान बनियन नामक लेखक ने अपनी जगत प्रसिद्ध पुस्तक Pilgrim's Progress जेल में लिखी थी।

3 फ़ारस के बहाई धर्म के आचार्य 'बहा' को फ़ारस की सरकार ने लगभग सारे जीवन जेल में ही रखा।

कारागार में बन्द कर देता है; पर वह जिन महात्माओं के पुण्य तेज के कारण स्वयं अपने ऊपर लज्जित होता है उन्हें भी जेल में छिपा देता है।

वह पापियों के पाप को नहीं सह सकता
वह पुण्यात्माओं के पुण्य-तेज को भी नहीं सह सकता,
यह अद्भुत विडम्बना है।

मनुष्य की जन्म-सिद्ध स्वाधीनता का निषेध कारागार है
मनुष्य की स्वाधीनता का साधन भी कारागार है
यह एक अजीब पहेली है।

सरकार का क़िला कारागार है और—
कांग्रेस का गढ़ भी कारागार है
शत्रु मित्र दोनों का एकागार !

स्वाधीनता छीनने को सत्याग्रहियों को
कारागार में डाला जाता है।
स्वाधीनता के दर्शन सत्याग्रहियों को
कारागार में ही होते हैं,
कितना विचित्र विरोध है।

जेल बन्धन का रूप है और मुनष्य का जीवन भी बन्धन है,
इसलिए जीवन को बन्धनरूप दिखाकर
जेल चरम मुक्ति का मार्ग खोलता है।

हथकड़ी जेल का शृंगार है
बेड़ी जेल का उपहार है
काल-कोठरी जेल की बहार है।

स्वाधीनता दीक्षा की विद्याभूमि,
सत्य के पुजारियों का मन्दिर,
स्वराज्य यात्रियों का तीर्थस्थान,
अध्यात्म-साधना का तपोवन,
हे कारागार ! हे पुण्यागार !!
तुम्हारी धूल के स्पर्श से यह जघन्य जीवन धन्य है,
तुम्हें प्रणाम! बारम्बार प्रणाम !!

1

जेल जाने से पहले

जुलाई सन् 1930 की 16 तारीख़ थी, मैं अपना सामान काश्मीर जाने के लिए तैयार कर रही थी। उन दिनों मेरठ की बहनें बड़ी संख्या में सत्याग्रह-सग्राम में भाग ले रही थीं। उनके साथ लगभग चार मास तक अनवरत काम करने के बाद दो महीने का अवकाश मिला था। मन में बहुत उमंगें थीं। काश्मीर के प्राकृतिक दृश्य अभी से आँखों के आगे घूमने लगे थे। यहीं से अपना प्रोग्राम निश्चित कर रही थी कि अचानक सड़क पर से आवाज़ आई—"पं. प्यारेलाल शर्मा गिरफ़्तार हो गये।"

शर्माजी मेरठ के एक माननीय प्रसिद्ध नेता हैं। मेरे दिल में खलबली मच गयी—अब क्या करना चाहिए ? एक तरफ़ बहिन-भाइयों से मिलने का चाव, शीतल-मन्द समीर का सेवन, और दूसरी तरफ़ कड़ी धूप और मेहनत का प्रश्न था और उसके बाद—जेल के लौहद्वार का दर्शन। देवासुर संग्राम छिड़ गया। कुछ तय न कर सकी। इसी बीच में प्रोफ़ेसरजी भीतर आये और कहने लगे, "ऊर्मिला क्या निश्चय किया है? अच्छी तरह सोच लो—एक ओर कर्त्तव्य, तो दूसरी ओर सुख तथा विश्राम है, बताओ, दोनों में किसे पसन्द करती हो ?" इस प्रश्न ने हृदय में बल दिया, दैवी भावों ने सुख की अभिलाषा पर विजय पायी और मैंने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया।

एक दिन शाम के लगभग चार बजे होंगे, मैं अपने कमरे में लेटी हुई थी। प्रोफ़ेसरजी पास ही बैठे हुए एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। अचानक मैंने कहा, "चलो आज एक साथ फ़ोटो खिंचवायें।" प्रोफ़ेसर जी ने कौतूहल भरी दृष्टि से मेरी ओर देखकर

गम्भीरता से उत्तर दिया—"ज़रूर, अभी चलने का निश्चय हो, तो सदर में मि. महमूद-नामक एक प्रसिद्ध फ़ोटोग्राफ़र के पास चलें।''

मैं—"फ़ोटोग्राफर से समय माँगिए।''

नौकर को भेजकर समय पूछा गया। उत्तर मिला—"अभी आ जाइये।"

मैं तैयार हो गयी। टाँगे पर बैठते ही मैंने देखा, शान्ता चली आ रही हैं। शान्ता महिला-सत्याग्रह-समिति की एक सदस्या तथा मेरी मित्र थीं। उसके हाथ में विलायती वस्तुओं के बहिष्कार सम्बन्धी कुछ नोटिस थे। वह अपना कार्य समाप्त करके, मुझसे मिलने आ रहीं थीं। आते ही उन्होंने पूछा— "कहाँ को तैयार हो ?" मैंने हँसते-हँसते उत्तर दिया—"जहन्नुम को। चलती हो ?'' शान्ता मुस्करा दीं और मेरे साथ टाँगे में बैठ गयीं।

मिस्टर महमूद पहले ही प्रतीक्षा में थे, तीन फ़ोटो लिये गये। लौटते हुए सदर की कोतवाली के पास पुलिस से भरी दो लॉरियाँ दिखाई दीं। इनके आगे डी.एस.पी. की मोटर थी। प्रोफेसर जी ने कहा—"मालूम होता है कि सदर की शराब की दुकानों पर स्वयंसेवक गिरफ़्तार किये जावेंगे।'' लॉरियाँ बाज़ार में चली गयी। प्रोफ़ेसरजी ने गम्भीरता से कहा—"ऊर्मिला! कल तुम्हारी भी बारी है।''

मैंने पूछा, "आपको कैसे मालूम?"

उन्होंने उत्तर दिया—"मेरा दिल कह रहा है।''

मैंने हँसते हुए कहा—"आपके दिल की क्या बात है। वह तो कुछ और ही कहने लगता है।"

आज बर्फ़ख़ाने के मैदान में शर्माजी के जेल जाने के उपलक्ष्य में उन्हें बधाई दी जा रही थी। दिल कह रहा था, आज तुम भी दिल खोलकर बधाई दे लो, शायद आज अन्तिम मौक़ा है। सभापति काज़ी नज़ीमुद्दीनजी के पास जाकर मैंने कहा—,''काज़ी मुझे भी समय चाहिए, शायद मेरा यह आख़िरी मौक़ा होगा।''

काज़ीजी ने एक बार मेरी ओर देखा और कहा—"अच्छी बात है, जितना चाहे समय लो।''

मेरी बारी आयी। मैं सभा-मंच पर खड़ी हो गयी। जनता ने महात्मा गाँधी की जय की ध्वनि से मैदान कँपा दिया। मैंने अपने हार्दिक-भाव बखेर दिये। मैंने

कहा—"कौन जानता है आनेवाला चमकता सूर्य किस-किस की सुनहरी बेड़ियों को अपने साथ लावेगा।" ये शब्द सचमुच अपने सम्बन्ध में मेरी भविष्यवाणी सिद्ध हुए।

घड़ी ने ज्योंही टन करके एक बजाया, मेरी नींद खुल गयी। मैंने देखा, प्रोफ़ेसरजी उठकर बैठे हुए हैं, और मेरा सेवक गोवर्धन पास खड़ा है। मैंने पूछा—"क्या बात है, अभी तो रात का एक ही बजा होगा, आप उठ क्यों बैठे ?"

प्रोफ़ेसर जी ने कहा—"इस घर में अब तुम चन्द घण्टों तक ही और रह सकती हो, ऊर्मिला !" मैं उठ बैठी। मुझे कुछ समझ न आया। मैंने फिर अपने प्रश्न को दोहराया। उन्होंने कहा—"प्रातःकाल पाँच बजे तुम्हें लेने के लिये पुलिस आवेगी।"

मैंने अपना सामान ठीक करने के ख़याल से कहा—"अच्छा चलो, नीचे के कमरे में चलें।"

मैंने अपना साथ जानेवाला सामान अलग रख दिया। प्रोफेसरजी ने कहा—"तुम सो जाओ सामान तैयार हो जावेगा।" लगभग सवा चार बजे होंगे कि मुझे प्रोफ़ेसरजी ने जगाकर कहा—"अब तैयार हो जाओ।" मैंने स्नानादि करके कपड़े पहन लिये। ठीक पाँच बजे एक लॉरी आयी, और मेरे घर से कुछ दूर पर आड़ में, खड़ी हो गयी। इस लॉरी में पुलिस के 4-5 सिपाही और पुलिस सब-इंस्पेक्टर था। एक मोटर मेरे दरवाज़े पर आकर हॉर्न बजने लगी। उस मोटर में केवल डी. एस. पी. और एक ड्राइवर ही थे। पास के घरों से कुछ स्त्री-पुरुष भी आ गये। 'महात्मा गाँधी की जय' कहते हुए मैं मोटर में बैठ गयी। मुझे जेल तक पहुँचाने के लिए प्रोफ़ेसर जी भी साथ ही चले। लोगों ने मुझे फूल उपहार में दिये, और मैंने चिरकाल के लिए उनसे नमस्कार कहकर विदा ली।

कुछ क्षणों के बाद मोटर अब्दुल्लापुर के पास मेरठ डिस्ट्रिक्ट जेल के द्वार पर आकर रुक गयी। साथ ही वह लॉरी भी आ पहुँची। डी. एस. पी. ने कहा—"क़ाजी साहब भी लाये जा रहे हैं।" मैं उनसे मिलने के लिये दरवाज़े पर रुक गयी। क़ाज़ी जी भी एक लॉरी में सिपाहियों के साथ बैठे नज़र आये। प्रोफ़ेसर जी से विदा ले हम दोनों जेल द्वार के भीतर चले गये। दरवाज़ा बन्द हो गया, और मैं चिरकाल के लिए बाहर की दुनिया से जुदा कर दी गयी। मेरी तलाशी ली गयी। मेरे बिस्तर में से तीन पुस्तकें जिनमें से दो 'कल्याण' के विशेषांक थे, और एक साधारण कहानियों की पुस्तक थी, ले ली गयी। मैं अपने साथ एक स्प्रिंगदार चरखा भी ले गयी थी,

पर वह भी जेलर ने अपने पास रखवा लिया। घर से चलते हुए प्रोफ़ेसर जी ने मुझे एक पत्र दिया था। जिसे मैं शीघ्रता में ठीक-ठीक पढ़ न सकी थी, पढ़ने के लिए तथा अपने पास रखने के लिए मैं उसे अपने पर्स में डाल लायी थी। जेलर ने कहा—"यह पत्र मुझे दे दीजिए।"

मैंने कहा—"यह मेरे पति का पत्र है, यह मैं आपको नहीं दे सकती।"

जेलर—"फिर अगर आप इसे पढ़ चुकी हैं, तो इसे फाड़ डालें।" मैंने उसी समय अपना प्यारा पत्र टुकड़े-टुकड़े कर दिया और भीतर अपने वार्ड की ओर चल दी।

2

जेल में पहला दिन

ज़िला जेलों में महिला-वार्ड बहुत छोटा-सा होता है क्योंकि मुक़दमा हो जाने पर छः मास या उससे अधिक दण्डवाली स्त्री सेंन्ट्रल जेल में भेज दी जाती है। मेरठ-ज़िला-जेल में दीवार के भीतर एक कोने में एक और छोटी दीवार से घिरा हुआ महिला-वार्ड बना है। इस वार्ड का एक ही द्वार है, जो लोहे के मोटे तख़ते से बना हुआ है। इस पर हर समय ताले पड़े रहते हैं, एक बाहर से बन्द किया जाता है और दूसरे को लेडी वार्डर भीतर से बन्द कर लेती है। बाहर की ताली दफ़्तर में और भीतर की ताली लेडी-वार्डर के पास रहती है। उसी द्वार के पास लाकर मुझे खड़ा कर दिया गया। मेरे साथ हेड वार्डर और मेरा सामान उठाये हुए एक क़ैदी नम्बरदार था। वार्डर ने बाहर से द्वार का ताला खोला और द्वार खड़खड़ाया, तब भीतर से भी ताला खोला गया। द्वार खुल गया। वार्डर ने कहा—“चलिए, यहीं आपको रहना है।” मैं बिना उत्तर दिए चुपचाप भीतर चली गयी। मेरे भीतर होते ही बाहर का ताला बन्द कर दिया गया और उसी समय लेडी वार्डर ने भीतर का ताला भी बन्द कर दिया।

जमादारिन एक बड़ी आयु की ईसाई स्त्री थी, जिसका जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था। मुझसे कहा गया—“यह स्त्री पैदाइश से ब्राह्मण है, आप चाहें तो इससे खाने में मदद ले सकती हैं।”

द्वार के ठीक सामने एक लम्बी बैरक थी। उसी के द्वार पर दो छोटी उम्र की क़ैदिनें बैठी हुईं मेरी ओर बड़ी उत्सुकता से देख रही थीं। उनके बाल खुले हुए थे तथा कपड़े फटे हुए और बहुत मैले थे।

जमादारिन मुझे उसी बैरक के भीतर ले गयी। बैरक में सत्रह लम्बी-लम्बी मिट्टी की चौकियाँ बनी हुई थीं, उन्हीं में से एक चौकी पर मेरा बिस्तर भी रख दिया गया। यही मेरा घर था।

मैंने बैरक के अन्दर घूम कर देखा। उसमें एक कोने में पाखाना भीतर ही बना था। मुझे इसी बैरक में सोना भी था, बड़ी कठिनता थी, पर क्या करती ? पाख़ाने से छह चौकियाँ छोड़ कर एक कोने में अपना बिस्तर बिछा ही लिया।

बैरक में छह बड़े-बड़े द्वार थे, जिनमें से एक को छोड़कर सब पर सात-सात लांहे की मोटी छड़ें लगी हुई थीं। ये सदा बन्द रहते थे, केवल एक द्वार जो लोहे की छड़ों द्वारा ही बनाया गया था, खुला रहता था। यह द्वार गर्मी-सर्दी दोनों ही समयों के लिए दुःखदायी होते है। गर्मी में लूएँ आँधी और धूप भीतर आकर कैदियों को सताती हैं, और सर्दियों में ठण्डी-ठण्डी हवा व वर्षा क़ैदियों के शरीरों को अकड़ देती है। पर इन द्वारों से जेल अधिकारियों को सुविधा होती है। बन्द क़ैदी भीतर क्या कर रहा है, यह बाहर से प्रतिक्षण दिखाई दे सकता है। अस्तु—मैं अपने बिस्तर को फैलाकर बैठ गई।

सहसा 'भारत माता की जय' के मधुर घोष से जेल गूँज उठा। मैं चौंक पड़ी। जेल में यह मधुर ध्वनि ! पर मुझे समझने में देर नहीं लगी—पास की, पुरुषों की बैरकों में जो राजनैतिक क़ैदी बन्द थे, उन्होंने काज़ी साहेब के पहुँचते ही स्वागतार्थ हर्षमय जय घोष किया था। मेरे दिल में आया—"काज़ी साहब अपनी साथियों में जा मिले हैं। उनका हर्ष और प्रेम से जयनाद द्वारा स्वागत सैकड़ों कण्ठों ने किया है, पर मेरा स्वागत ? मेरा स्वागत केवल मूक-वायु ने हलकी-सी सर-सर ध्वनि करके ही समाप्त कर दिया।"

वहाँ मेरा कोई साथी न था।

हाँ, मेरी बैरक में दो स्त्रियाँ और भी रहती थीं। एक तो घर से भागकर आयी थी, दूसरी को धर्म परिवर्तन करने के कारण झगड़ा हो जाने से जेल भुगतनी पड़ रही थी।

वह एक ब्राह्मण की लड़की थी। इसके उत्पन्न होने के कुछ समय बाद उसके पिता ने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया था। इसीलिए बड़े होने पर एक मुस्लिम पुरुष से उसका विवाह कर दिया गया था, जो इसे बहुत मारा-पीटा करता था। इस तरह तंग आकर उसने एक हिन्दू से शादी कर ली, जहाँ उसे शुद्ध भी किया गया, और आपस के हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में उस स्त्री को छः मास का दण्ड मिल गया, वह स्त्री कोई उत्तम संस्कारों की न थी।

दोनों स्त्रियाँ धीरे-धीरे आयीं। उनमें से एक ने मुझसे पूछा, "तुम किस जुर्म में आयी हो।"

मैंने मुस्करा कर कहा—"माँ को प्यार करने का जुर्म किया है।"

दोनों स्त्रियाँ एक-दूसरी का मुँह देखने लगीं। उन्हें मेरी बात समझ नहीं आयी।

कुछ देर में मुझे मूँज की बनी हुई एक चटाई और एक काला कम्बल दिया गया। चटाई नीचे बिछाने के लिए और कम्बल ऊपर ओढ़ने के लिए था। मुझे अभी एक घण्टा भी न बीता था, जब द्वार खड़खड़ाया जाने लगा, जमादारिन भागी। ताला खोला गया। द्वार खुला तो जेलर और सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब भीतर आते दिखायी दिये। मेरे लिए एक छोटी-सी छः सीटोंवाली बैरक ख़ाली करवाई गयी, उस बैरक की हालत पहली बैरक से कहीं अधिक बुरी थी। अतः मैंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। मेरे मना करने का एक और भी कारण था, मुझे 'ए' क्लास मिलने के कारण अकेले रखने का प्रबन्ध किया गया था। वैसे तो मेरे साथ की राजनैतिक क़ैदी कोई बहन वहाँ थी ही नहीं, और इख़लाकी क़ैदियों को भी मुझसे अलग रखने का प्रबन्ध किया जा रहा था। अस्तु, उसी लम्बी बैरक में ही मेरा निवास-स्थान माना गया। मुझे जेल हस्पताल से एक लोहे की जालीदार पलंग दिलवा दिया गया। कुछ फल और एक पाव दूध प्रातः नाश्ता के लिए मुझे दिया गया और द्वार बन्द हो गया।

भूख तो लग रही थी, मैंने खाने के लिए सन्तरा उठाया। खोलते ही उसमें एक विचित्र चीज़ के दर्शन हुए, वह था एक छोटा-सा पत्र। पत्र का मज़मून यह था :

18.7.30

बहनजी,

बन्दे!

हम सब लोगों की ओर से आप को जेल आने के उपलक्ष्य में बधाई हो। जिस समय आप मुलाकात के लिए अपने वार्ड से बाहर जावें, हमारे वार्ड के द्वार की ओर देख लें। हम सींकचों में ही से आपको प्रणाम करना चाहते हैं।

हम हैं,
आपके भाई
जेल के क़ैदी

थोड़ी देर में मेरे वार्ड का द्वार फिर खुला, एक वार्डर एक क़ैदी के सिर पर कोई चीज़ लाता हुआ दिखाई दिया, वह था गद्दा। जेल द्वारा मुझे एक गद्दा भी बिछाने को मिला, पर उस गद्दे में और काँटे के बिछौने में कुछ अन्तर न था। मामूली कपड़े के अन्दर गाय भैंसों को खिलाये जाने वाला सूखा भूसा भरा हुआ था। मैंने उसे बिछाने की व्यर्थ चेष्टा की, कभी वह सब एक तरफ़ हो जाता और कभी दूसरी ओर पहुँच जाता। मैं हैरान थी। इसका क्या इस्तेमाल किया जाता होगा। जैसे-तैसे उसे लोहे के पलंग पर नीचे मूँज की चटाई बिछाकर उसके ऊपर यह गद्दा बिछा दिया। मैंने चाहा कि देखूँ, इस पर कैसे सोया जाता है। ज़रूर यह गद्दा जेल हस्पताल से दिलवाया गया होगा और रोगी ऐसे ही गद्दों पर सुलाये जाते होंगे, मैं भी तो देखूँ!

मैं गद्दे पर लेट गयी । आह! उन रोगियों की क्या दुर्दशा होती होगी। मैं गद्दे पर पूरा एक मिनट भी न लेट सकी। पैने-पैने तिनकों ने कपड़े के दबते ही अपने सिर बाहर कर लिये, हज़ार जिह्वाओं द्वारा डंक मारने के लिए गद्दे ने शेषनाग का रूप धारण कर लिया।

मैं उठ बैठी। गद्दा वापस कर दिया। ख़ाली खाट पर भी बिस्तर बिछाना कठिन था। खाट लोहे की बनी हुई थी, और उसमें भी बड़े-बड़े छेद से बन रहे थे, जिससे बिस्तर के दबते ही जगह-जगह गड्ढे से पड़ जाते थे। ख़ैर, मैंने मिट्टी की चौकी पर बिस्तर बिछाना ही पसन्द किया।

रात को नींद ठीक न आयी थी, वैसे भी काम करते हुए थकावट प्रायः बनी ही रहती थी। ख्याल आया कि अब आराम करने के दिन आये हैं। सरकार ने इसीलिए बुला लिया है। मैं सोने की चेष्टा करने लगी पर, धूप निकल आयी थी। जुलाई का महीना था, गर्मी बहुत अनुभव होने लगी।

धूप रोकने का कोई (किवाड़ आदि) साधन नहीं था। मेरा जन्मस्थान इस पृथ्वी के स्वर्ग, काश्मीर में हुआ है। इस कारण गर्मियों के दिनों में हर साल काश्मीर रहने का मुझे अभ्यास था। यह मेरी पहली गर्मी थी। जो मैंने मैदान में काटी और वह भी जेल में, जहाँ गर्मी के साथ मच्छरों का भी अखण्ड राज्य था। ख़ैर, मैंने सोने की कोशिश की; परन्तु दस बजे होंगे, वार्ड का द्वार खुला, एक जमादार ने आकर सूचना दी कि प्रोफ़ेसर जी तुमसे मिलने आये हैं। मैं उठ कर वार्ड से बाहर आयी, द्वार से बाहर होते ही एक तरफ़ से आवाज़ आई, "बहनजी, 'बन्दे', 'भारत माता की जय।'... मैंने चौक कर देखा, पर कुछ स्पष्ट न देख सकी। हाँ, इतना अन्दाजा

हो गया कि मेरे भाई कहीं सींकचों में से मेरा स्वागत कर रहे हैं।

जेल के दफ़्तर में प्रोफ़ेसर जी एक कुर्सी पर बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे, वहीं मैं भी जा कर पास की एक कुर्सी पर बैठ गयी। प्रोफेसर जी ने कहा—"शहर में हड़ताल हो गयी है। कालेज को बन्द करवाया जा रहा है, कई स्थानों पर हड़ताल करवाने के लिये बहनें पिकेटिंग कर रही हैं।" पर मेरा दिल उछलने लगा कहीं मैं भी उनका साथ दे सकती।

बीस मिनट बीतते देर न लगी, जेलर ने कहा—"आपका समय समाप्त हो गया।" मैं उठ खड़ी हुई और प्रोफ़ेसर जी को नमस्कार कर के अपने वार्ड की ओर लौट पड़ी।

इस बार मुझे 12 नम्बर का वार्ड दूर से दिखायी दिया, उसी वार्ड में मेरे परिचित भाई राजनैतिक क़ैदी थे, वह इतने दूर थे कि मैं उन्हें पहचान भी नहीं सकी। हाँ, 'बहनजी बन्दे' के शब्द सुनाई देने लगे। मेरी इच्छा हुई, इन लोगों से कुछ बात करूँ पर मैं 'क़ैदी' थी, बात करना मेरे अधिकार में न था। मजबूर होकर मैं वार्ड के भीतर चली गयी।

इसके बाद वही मेरा वार्ड और वही मैं...द्वार बन्द हो गया। मैं बैरक में आकर चटाई पर बैठ गयी। तरह-तरह की पिछली घटनाएँ रह-रह कर आँखों के आगे नाचने लगीं। प्रोफेसर जी के यह शब्द 'अच्छा ऊर्मिला नमस्ते' कानों में गूँजने लगे। मैं सोचने लगी। अभी तो पहला ही दिन है। कहा करते थे, हम गुलाम हैं। पर वास्तव में गुलामी क्या चीज़ है, उसका अनुभव अब होने लगा। बन्द पक्षी पिंजरों से बाहर उड़कर जाना चाहते हैं। पक्षियों की याद आते ही मेरी नज़र खुद-ब-खुद नीम के पेड़ की ओर चली गयी। यह पेड़ मेरे वार्ड में ही था। मुझे दिखाई दिया—उस पर अनेक पक्षी बैठते थे और जब चाहते थे, उड़ जाते थे।

मैं अपने ध्यान में लगी थी, मुझे यह भी पता नहीं लगा कि वार्ड का द्वार कब खुला। हाँ, मैंने इतना देखा—एक थाली में खाना परस कर लाया गया है। खाना मेरे घर से आया था। इसलिए जेल के खाने का अनुभव उस समय मैं न कर सकी। दोपहर में कुछ वर्षा-सी होने लगी। मैं बैरक में चली गयी। और दोपहर का वक़्त नींद में ही व्यतीत कर दिया।

शाम के चार बजे होंगे कि वार्ड का द्वार खुला। सामने मैदान में आते-जाते क़ैदी दूर से दिखाई देने लगे। किसी के हाथ में, तो किसी के पाँवों में लोहे के ज़ेवर

चमकते नज़र आ रहे थे। अदालत से क़ैदी लोग अपने भाग्यों का निर्णय लेकर चले आ रहे थे। मैं उत्सुकता से देखने लगी। इतने में देखा कि सिर पर एक बड़ी-सी पीतल की परात रखे हुए एक क़ैदी हमारे वार्ड के द्वार पर आया। उसके साथी के हाथ में एक लोहे की बाल्टी थी, वे लोग क़ैदियों को रोटी बाँट रहे थे। लेडी वार्डर ने पुकारा—"चलो रोटी ले लो !"

क़ैदिनें अपना-अपना लोहे का तसला और कटोरी लेकर आगे बढ़ीं। रोटी परसने वाले ने पाँच-पाँच रोटियाँ और एक-एक कड़छी दाल की सबको बाँट दी। मैं भी यह देखने के लिए कि इन लोगों को कैसा खाना दिया जाता है, बैरक से वाहर द्वार के निकट आयी, मैंने अधखुले द्वार में से बाहर अहाते की ओर देखा, पंडित प्यारेलाल शर्मा, चौधरी विजयपाल सिंह, जगदीशचन्द्र आदि मेरठ के राजनैतिक क़ैदी चले आ रहे हैं। मैं नहीं कह सकती थी कि मुझे उन लोगों के देखने से कितना हर्ष और आनन्द हुआ। ठीक उसी तरह जैसे किसी निर्धन को अत्यन्त धन राशि के दर्शन प्राप्त हो जावें। पर यह मेरा हर्ष स्थायी न रह सका। जमादार ने शीघ्र ही द्वार बन्द कर दिया।

शाम को मेरे लिए जेल से खाना आया। खाना अपनी ओर से शायद यत्न से बनाया गया था। पर मैं कोशिश करने पर भी उसे खा न सकी। आटे में रेत थी जो, दाँतों के नीचे आकर शरीर भर में एक विचित्र झनझनाहट उत्पन्न करने लगी। मैंने खाना छोड़ दिया; लेडी वार्डर ने कहा—"खा लो बीवी, दुःख मानने की कौन-सी बात है ?"

वार्डर यह नहीं समझ रही थी कि यह खाना खाया ही नहीं जा रहा क्योंकि इसमें रेत है। ख़ैर, मैंने खाना दूसरी क़ैदिनों को बाँट दिया।

लगभग साढ़े छः बजे होंगे कि द्वार खुला। जेलर साहेब दो वार्डर के साथ भीतर आये। आपने कहा—"अब बन्द किये जाने का समय है। आप भीतर चली जावें।"

मैं—"अभी से!"

जेलर—"जी हाँ अभी से।"

मैं भीतर चली गयी। बैरक का लोहे के सीकचों वाला द्वार बन्द कर दिया गया। इसको लोहे की एक मोटी ज़ंजीर द्वारा कस दिया गया, जिस पर दो मोटे लोहे के ताले डाल दिये गये।

उसके बाद बाहर के हाते के द्वार को भी बाहर से बन्द कर दिया गया। वार्ड के भीतर एक बैरक में दो तालों के अन्दर हम तीन स्त्रियाँ प्रातः पाँच बजे तक के लिए बन्द हो गयीं। मैंने देखा—सूर्य भगवान अब भी उसी तरह चमक रहे हैं, उनकी रश्मियाँ लालसामयी ज्योति से संसार को अब भी मुग्ध कर रही थीं। मैं बैरक के अन्दर ज़रा से स्थान में ही टहलने लगी, मुझे ख्याल आया कि शहर में यही समय जलूस निकलने का है। मैं कल्पना करने लगी,—"शहर में बड़ा भारी जलूस निकल रहा होगा। स्त्रियाँ, बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी हर्ष से उसमें सहयोग दे रहे होंगे। दुकानदार उसका स्वागत कर रहे होंगे, अब मीटिंग होगी, विदेशी कपड़े की होली जलायी जावेगी।" फिर ख्याल आया कि मैं तो अब इस सबसे वंचित हो गयी हूँ।

विचारधारा समाप्त हो गयी, पर अब भी आकाश पर लाली थी। अभी नींद का समय नहीं था। अन्दर टहलने के लिए जगह भी नहीं थी। मैं लेट गयी। लेटते ही मच्छरों ने अपने प्रेमपूर्ण मधुर गान से रात्रि में होने वाले काण्ड की सूचना अभी से दे दी। कोई मच्छर हाथ पर तो कोई पैर पर बैठ कर मेरा आतिथ्य करने लगा। मेरे दुर्भाग्य से हवा भी बन्द हो गयी थी। मारे गर्मी और मच्छरों के साक्षात् नरक के दर्शन होने लगे। मैं कभी लेट जाती, और कभी बैठ जाती और कभी टहलने लगती। मेरी साथी क़ैदिनें मेरी इस क़वायद पर ध्यान न देकर अपनी ग्रामीण भाषा में गाने लगी। मुझे बड़ा आश्चर्य होने लगा, मेरी तो बुरी हालत हो रही थी, पर वे दोनों आनन्द से मिट्टी की खाटों पर पाँव फैलाकर गा रही थीं। पर नींद उन लोगों को भी नहीं आ रही थी।

जैसे-तैसे रात का एक बजा। मैं बिस्तर पर लेट गयी, पर अधिक देर तक लेटी न रह सकी। मैं जेल में आज ही आयी थी मच्छर मेरा स्वागत गान मुझे विशेष रूप से सुनाना चाह रहे थे, पर मैंने उनकी अवज्ञा करके सोने की कोशिश की थी, इस पर वे रूठ गये। अन्त में उनके काटने से मेरी नींद खुल गयी और फिर प्रातः तक नहीं आयी। मेरा ख्याल था कि थोड़ी देर में दिन निकल आवेगा। पर जेल के घण्टे का आवाज़ से मालूम हुआ कि अभी दो ही बजे हैं; मैंने मन्त्र पाठ शुरू किया। बचपन से आज तक जो भी कोई मंत्र और श्लोक पढ़े या याद किये थे, उन सभी की आवृत्ति कर डाली, परन्तु आश्चर्य कि यह मंत्र पाठ समाप्त हो गया मगर रात्रि अब भी शेष थी। अन्त में परमात्मा को दया आयी क्रमशः शीतल मन्द समीर के झोंके आने लगे, और उन्होंने थपकियाँ देकर मुझे सुलाना चाहा-पर सहसा द्वार खड़खड़ाया गया। आवाज़ आयी, 'उठ जाओ... दरवाज़ा खुलता है।'

3

अदालत का स्वांग

खटखटाहट सुन कर हम लोग उठ कर बैठ गयीं। तब जमादारिन के साथ दो जमादारों ने आकर बैरक का द्वार खोल दिया। हमारी गिनती की गयी और वार्ड बन्द कर दिया गया। अब मुझे स्नान करने आदि के लिए आज्ञा मिली, और मैं परमात्मा को धन्यवाद करती हुई बैरक से बाहर निकली।

लगभग ग्यारह बजे होंगे, मुझे सूचना मिली कि प्रोफ़ेसर जी और दूसरे लोग मुझसे मिलने आये हैं; वार्ड का द्वार खुला। एक वार्डर और लेडी वार्डर के साथ मैं जेलर के दफ़्तर में पहुँची। मैंने देखा प्रोफ़ेसर जी के साथ पं. रामस्वरूप शर्मा (जत्थेदार, हिन्दुस्तानी सेवादल) भी आये हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

प्रोफ़ेसर जी ने पूछा—"कुछ तकलीफ़ तो नहीं !"

मैं—नहीं जी।

प्रोफ़ेसर जी—आज तुम्हारा भी मुकदमा होगा।

मैं—कहाँ ? अदालत में—

शर्माजी ने कहा, "लोग आपको देखना चाहते हैं।" मैं इसका क्या उत्तर दे सकती थी···समय समाप्त हो गया। प्रोफ़ेसर जी चले गये, मैं फिर अपनी उसी बैरक में आ गयी।

नया स्थान था, कोई परिचित अच्छी सोसायटी का साथी नहीं था। सिर्फ़—दो क़ैदिनें थीं। उनको बहुत बातों से तबीयत घबराने लगी। मैं बैरक से उठ कर बाहर एक पेड़ के नीचे कम्बल बिछा कर बैठ गयी। घर की याद, मित्रों की स्नेहमयी बातें, रह-रह कर याद आने लगीं, तबीयत घबराने लगी; मैंने उनको भुलाने के ख्याल से सोने की चेष्टा की।

अर्धनिद्रित अवस्था में मेरे सामने एक चित्र-सा खिंच गया—शहर में जुलूस

निकल रहा है, बड़ा भारी जुलूस है, बहुत-सी पताकाएँ जलूस की सुन्दरता बढ़ा रही हैं। हज़ारों स्त्री-पुरुषों के झुण्ड-के-झुण्ड उसमें आ-आकर सम्मिलित हो रहे हैं। सब से आगे स्त्रियाँ गाती हुई जा रही हैं—

बाग़ में सर-सर का झोंका, आशियाना ले गया।
क़ैद में हम को हमारा, आबोदाना ले गया।।
गुल-गुले गुलची का शिकवा, बुलबुले भारत न कर।
तुझको पिंजरे में तेरा यह, चहचहाना ले गया।।
कौन कहता है ज़बरदस्ती से, हम पकड़ गये।
जेल में खुद हम को शौके, क़ैदखाना ले गया।।

मैंने भी उनकी स्वर में स्वर मिलाकर गाना शुरू किया—

हमको पिंजरे में हमारा, चहचहाना ले गया।।

अचानक लेडी वार्डर ने आवाज़ दी। मैं चौंक उठी, अरे यहाँ तो कहीं जुलूस नहीं, यह तो वही कम्बल है, जिस पर जेल के अन्दर लेटी हुई हूँ। मैंने अपने स्वप्न को सोचना शुरू किया, ठीक तो है हम जान-बूझ कर ही तो जेल आये हैं, दिल में ख्याल आया—अगर मैं ऐसा नहीं करती तो ? आत्मा ने कहा तो बड़ा भारी पाप होता। तुमने अपनी माँ को प्यार किया। अगर यह गुनाह है तो दुनिया में पुण्य क्या हो सकता है ? मैंने आत्माभिमान के साथ कहा; अगर इस इक्कीस साल की उम्र में कोई पुण्य किया है, तो वह यही है। मेरा चेहरा खिल उठा, दिल में उत्साह तरंगें उठने लगीं, जोश में मैंने गुनगुनाना शुरू किया।

कौन कहता है ज़बरदस्ती से हम पकड़े गये।
क़ैद में हम खुद शौके, जेलख़ाना ले गया।।

ज्यों-ज्यों मैं इसे गाने लगी, मेरा उत्साह बढ़ने लगा। जमादारिन ने फिर आवाज़ दी—"तुम्हारे मुक़दमे का वक़्त हो गया।"

मैंने खुशी से कहा—"अच्छी बात है।"

जमादारिन—"तुम्हारे मुक़दमे का पता नहीं क्या नतीजा होगा ?"

मैं—"सज़ा मिलेगी,।"

जमादारिन—"कितनी?"

मैं—"मेरे काम को देखकर छः मास की तो देगा ही।''

जमादारिन—"ऐसा मत कहो बहन।"

जेल के मुख्य द्वार के ठीक ऊपर जेल का दफ़्तर है, यहीं मेरे भाग्य का फ़ैसला करने का प्रबन्ध किया गया था। मैं वार्ड से बाहर निकली, सींकचों में से सुनाई दिया—'भारत माता की जय,' मैंने भी बिना पहचाने हाथ जोड़ दिये और आगे चल पड़ी। द्वार पर बड़ी भीड़ थी, कड़कती हुई दुपहरी के ठीक तीन बजे खुले मैदान में स्त्री और बच्चों को देखकर मेरा दिल दुखने लगा, पर आनन्द भी हुआ। ये लोग मुझसे प्रेम रखते हैं। हाथ जोड़ कर सबको दूर ही से नमस्कार करती हुई मैं दफ़्तर की ओर चल दी।

ऊपर कमरे के ऐन बीच में एक बड़ी-सी मेज़ के सामने ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट मि. कौगिल बैठे थे। पास दो तीन क्लर्क मुक़दमों में सहायता देने के लिये थे। मेज़ के दोनों ओर सीटें मुक़द्मा देखने वालों से भरी हुई थी। मेरे से पहले शर्मा जी आदि का मुक़दमा हो रहा था। उनके समाप्त होते ही मेरी बुलाहट हुई। मेज़ के पास बैठने को मुझे कुर्सी दी गयी। मैंने बैठते हुए कहा मेरा मुक़दमा शुरू होने से पहले उन लोगों को बुला लेना ज़रूरी है, जिन्होंने मेरा मुक़दमा सुनने के लिए अर्ज़ी दे रखी है।

बहुत-सी बहनें और भाई ऊपर आ गये। जगह कम होने के कारण कइयों को सीढ़ियों में ही खड़ा होना पड़ा। मुक़दमा शुरू होते ही मैंने कहा कि सारी कार्यवाही हिन्दी गें ही होनी चाहिए। ऐसा ही हुआ। मुझे बताया गया कि तुमने 13 तारीख़ को टाउन हाल में विद्यार्थियों की मीटिंग में उन लोगों को संबोधित करते हुए कहा था।

"तुम लोग शराब की दुकान पर धरना दो। शराब की दुकान बन्द करवा देना तुम्हारा कर्त्तव्य है।"

मुझसे पूछा गया क्या आप मंजूर करती है?

मैंने कहा, "जी हाँ।"

फिर कहा गया, ''यह काम क़ानून के ख़िलाफ़ किया गया है, आप पर पिकेटिंग आर्डीनेंस के मुताबिक़ मुक़दमा चलाया जाता है।''

मैं—"अच्छी बात है।"

फिर पूछा गया, आप गवाही चाहती हैं या स्वीकार करती हैं ?

मैंने कहा—"स्वीकार है।"

मेरी एक बहन ने मुझसे कहा, ''अरे यह क्या करती हो? ज़रा उनकी शक्ल तो देख लेने दो जिन्हें तुम्हारे ख़िलाफ़ गवाही देने के लिए यहाँ लाया गया है।''

मुक़दमा का नाटक तो समाप्त हो गया था। मैजिस्ट्रेट ने हुक्म सुनाते हुए कहा—

"आप लीडर हैं, इसलिए आप को छह मास की सादा सज़ा दी जाती है। जो इस धारा के अनुसार ज़्यादा से ज़्यादा दी जा सकती है।"

मैंने मैजिस्ट्रेट को इस उपहार के लिए धन्यवाद दिया। मेरी बहनों ने मुझे फूलमालाएँ उपहार में दीं। मैं सबको नमस्कार करती हुई नीचे आ गयी, जेल के द्वार पर खड़ी जनता ने उत्सुकता से पूछा—क्या मिला!

मैंने उत्तर दिया— ''कुल छः मास।'' सबने आशीर्वादमय बधाई के वाक्य कहे और मैं भीतर आ गयी। मेरे लिए जेल का द्वार छः मास के लिए बन्द हो गया। जेल के भीतर के भाइयों ने जिनका अभी मुक़दमा हुआ था जयघोष द्वारा मुझे बधाई दी। और मैं अपनी बैरक में पहुँचा दी गयी। मेरे दिमाग़ में तरह-तरह की बातें चक्कर काटने लगीं। अभी दस मास भी नही हुए थे जब मेरा विवाह हुआ था। मेरे पूज्य पिता, भाई और बहन सुन्दर काश्मीर में हैं, जहाँ मेरा सुनहला बचपन बीता है, चार बरस हुए मेरी प्यारी जननी को जग-माता ने सदा के लिए अपनी गोद में बुला लिया था। मेरी माँ मुझसे छिन गई, फिर विवाह के बाद भाई-बहनों का भी विछोह हो गया; यहाँ मेरठ में आकर नये सिरे से नया संसार बसाया था। आज वह भी छूट गया। छः मास के लिए जेल की दीवारें मेरी मित्र होंगी, वायु मेरी बातों का मूक उत्तर दिया करेंगी। पेड़ों पर बैठे पक्षी ही मेरे प्रश्नों को सुनेंगे। छः मास उफ़! बड़ा लम्बा समय है पर साथ ही ख्याल आया—यह क्या सोच रही हूँ। यह तो मुझे प्रभु ने मुँहमाँगी मुराद दी है। मैं स्वयं ही तो आयी हूँ। मेरे इस कष्ट से सम्भवतः माँ के संकटों में कुछ कमी हो सकेगी इस विचार ने पहले विचारों को बदल दिया। दूसरी क़ैदिनों ने पूछा—"क्यों बीबी, क्या फ़ैसला हुआ !"

मैं—"छः मास मिले हैं।'' अब छः मास कहते दुख नहीं था। हर्ष था, आनन्द था। मैंने सुना कि मेरे साथ जितने भी और भाई पकड़े गये थे उन सभी को छः मास का ही उपहार मिला है।

4

सज़ा के बाद

तीस जुलाई से मेरे छः मास शुरू होते थे मैंने बैठे-बैठे हिसाब लगाया, आज बीस तारीख़ है। जनवरी में जाकर किस दिन मुझे इस स्थान को छोड़ कर अपने प्यारे मित्रों और सम्बन्धियों के दर्शन हो सकेंगे। बड़ी कल्पना थी—जनवरी में मेरे छूटने की तारीख़ आवेगी। मेरे घर वाले उस तारीख़ को कितने चाव से प्रतीक्षा कर रहे होंगे। दिन निकलते ही सब के सब जेल से मुझे लिवा लाने की तैयारियों में लगेंगे, उस तैयारी में उन्हें कितना आनन्द मिलेगा। ठीक दस बजे मुझे बुलावा जावेगा, मैं पहले से ही तैयार हो जाऊँगी, जेल के दफ़्तर में बुला कर मुझे घर जाने की आज्ञा दी जायेगी। मेरी आँखों के सामने उस दिन का पूरा दृश्य खिंच गया। मैं अपनी कल्पना द्वारा देखने लगीं—वार्डर ने लोहे का बड़ा द्वार खोल दिया है और मैं उस द्वार से बाहर हो गयी हूँ। आहहः ! मेरे सम्बन्धियों के चेहरों पर कितना उल्लास है, कितना आनन्द है। सभी बार-बार मुझसे मिल रहे हैं। मैं अपनी कल्पना में डूबी हुई थी, सहसा ज़ोर से किबाड़ का ताला हिलाया गया। यह इशारा वार्ड के बाहर से द्वार खुलने पर भीतर वालों को सावधान करने के लिए हुआ करता है। मैं चौंक उठी पर शीघ्र ही मैंने अपनी आँखें फिर बन्द कर लीं। मैं चाहती थी, वह दृश्य मेरी आँखों से लोप न हो, मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे सत्य ही मेरी छूटने की तिथि आ गयी है। मुझे बुलाने के लिए द्वार खोल कर वार्डर आया है। वार्डर ने आवाज़ दी—"चलिए !"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। वार्डर ने फिर कहा—

"चलिए साहब बुलाते हैं !"

वार्डर "आपका मुलाहिज़ा होगा !"

मेरा स्वप्न मिट गया। उफ़! आज तो उन महीनों का पहला ही दिन है? अभी तो मेरी तबीयत घबराने लगी, अभी तो इन्हीं दीवारों के भीतर, इन्हीं जमादारों की

देख में पूरे छः मास व्यतीत करने हैं। मैं यही सोच रही थी कि वार्डर ने मेरे बहुत पास आकर फिर कहा–

"बहन जी शीघ्र चलिए, नहीं तो..."

"नहीं तो क्या?" मैंने चौंक कर पूछा।

वार्डर–"साहब जवाब तलब करेंगे।"

मैं उठी और वार्डर के साथ चल पड़ी। अपने द्वार के बाहर होते ही मैंने देखा, ठीक सामने आँगन में एक कुर्सी पर जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल अब्दुल रहमान बैठे हैं, उनके सामने दो लम्बी कतारें सज़ा पाए हुए क़ैदियों की खड़ी हैं, जिनमें कई सत्याग्रही भी हैं, परन्तु उस वर्दी में जो 'सी क्लास' के क़ैदियों को मिलती हैं, किसी को दूर से पहचान लेना बड़ा कठिन था। सुपरिण्टेण्डेण्ट की कुर्सी के पीछे सरकारी पोशाक पहने जेल डाक्टर और क्लर्क आदि खड़े थे। मुझे भी वहीं ले जाकर क़ैदियों के पास खड़ा कर दिया गया। मैंने देखा सत्याग्रही क़ैदी मुझे नमस्ते करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि उनकी मजबूरी स्पष्ट बता रही थी कि अगर वे मुँह से कुछ भी बोलेंगे तो उनपर पर कोड़े पड़ने लगेंगे। जेलर क्रूर दृष्टि से क़ैदियों की ओर घूर रहा था।

इसी समय सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे पूछा–

"क्या आप अच्छी तरह हैं ?"

मैं–"जी हाँ।"

सुप.–"आपका ही नाम उर्मिला शास्त्री है ?"

मैं–"जी हाँ !"

सुप.–"क्या आप अपील करना चाहती है ?"

मैं–"नहीं।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट ने गम्भीरता पूर्वक मेरी ओर देखते हुए कहा–"जमादारिन, इन्हें ले जाओ।"

बस मेरा मुलाहिज़ा हो गया। मैं चली आयी और उसी वार्ड में, उसी बैरक में, अपनी चटाई पर आकर बैठ गयी। सारी उदासी क़ाफूर हो गयी। मैं अब प्रसन्न थी। जमादारिन ने अपने आप ही दूसरी क़ैदिनों से कहना शुरू किया–"देखो, साहेब ने इनसे अपील के लिए पूछा पर यह मना कर आयीं। अपील करतीं, तो साफ़ छूट जातीं।"

उन दोनों में से एक ने कहा–"अजी इनका क्या है जब चाहेंगी छूट सकती

हैं। इन पर तो गाँधी महाराज का हाथ है। वह इन्हें एकदम छुड़ा लेंगे।

मैं—"कैसे ? वह तो खुद जेल में हैं !"

क़ैदिन—"अजी कहने को जेल में हैं उनको कौन बन्द कर सकता है? हमने तो सुना है— एक बार उन्हें सात तालों में बन्द किया गया, ताले बाहर पड़े ही रहे, और गाँधी महाराज अपनी शक्ति से जेल के बाहर आ गये।"

मैं—"अच्छा यह तुम्हें सुनाया किसने?"

कैदिन—"वाह, तुम जानती हुई भी ऐसा कहती हो ! सारा गाँव तो कहता है।"

मैंने हँस कर कहा— "हाँ, ऐसा ही होगा।"

मुझे इन लोगों के अन्धविश्वास के मिटाने की इच्छा नहीं हुई। हाँ, यह बात बार-बार मेरे मन में उठने लगी कि इन लोगों की बातें किसे सुनायें ! मेरा ध्यान फिर से अपने मित्रों की ओर खिंचने लगा। दिल में एक दर्द होने लगा—आह, मैं अपने भावों को दूसरों तक नहीं पहुँचा सकती। ख्याल आया, पत्र लिखूँ। पर मेरे पास काग़ज़ तक न था। लिखने का साधन, फ़ाउण्टेन पेन तो मेरे साथ है, पर काग़ज़ ! वह अभी तक नहीं मिला। अब क्या करूँ ? मन बहलाने के लिए मैं किताब लेकर पढ़ने लगी, इसी समय, फिर से द्वार पर खटका होने लगा, सबकी दृष्टि उसी ओर खिंच गयी। द्वार खुला, सर पर चटाई और कम्बल रखे हुए, एक हाथ में तसला कटोरी लिए और दूसरे से छोटे बच्चे को गोद में सम्भाले हुए क़ैदियों के वेश में एक स्त्री भीतर आती दिखाई दी। दोनों क़ैदिनों का कौतूहल बढ़ गया। क़ैदिन वे द्वार के भीतर आते ही सर की चटाई और कम्बल जमीन पर पटक दिया। लेडी वार्डर को सलाम करके वह सीधी बैरक में आ पहुँची। उसे देख कर मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि उसके चेहरे पर दुःख का कोई भाव न था। वह कमज़ोर इतनी थी कि उसके चेहरे की एक-एक हड्डी निकल आयी थी; उसकी आँखों में रोहे पड़ गये थे, जिनसे पानी निकल रहा था। लेडी वार्डर उसे पहले से जानती थी। साल भर पहले वह इसी जेल में एक वर्ष की सज़ा पाकर फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल भेज दी गयी थी, उसका नाम मुहम्मदी था। अब छोड़े जाने के लिए वापस मेरठ लायी गयी थी। उसने लेडी वार्डर से पूछा—"यह बीबी कौन हैं ?"

लेडी वार्डर—"यह कांग्रेसवाली[1] हैं।"

मुहम्मदी ने मुझसे कहा—"सलाम बीबी !"

---

1. जेल में राजनैतिक क़ैदी इसी नाम से बुलाये जाते हैं।

मैं—"सलाम।"

लेडी वार्डर ने उन क़ैदिनों के हाल पूछने शुरू किये, जो यहाँ से फतेहगढ़ भेजी जा चुकी थीं। बहुत देर तक बातें होती रहीं। मुझे भी फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल के हाल जानने की इच्छा थी, मैंने पूछा—

"वहाँ तुम्हारे साथ कैसा सलूक होता था ?"

मुहम्मदी—"बीबी कुछ मत पूछो। ज़रा-सी बात पर मार पड़ने लगती थी। नम्बर- दारिनें और बैरकदारिनें तो हमारा खून ही पी जाती थीं।"

लेडी वार्डर ने ताने से कहा—"क्यों सुख भी तो बहुत देती हैं।"

मुहम्मदी—"जिन्हें देती हैं उन्हें ही देती हैं, मेरी तो रो-रोकर आँखे ही ख़राब हो गयीं।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। सुख जिन्हें देती हैं इससे क्या मतलब, मैंने पूछा—

"जो रिश्वत देती होंगी, उन्हें तंग न करती होंगी।"

मुहम्मदी—और लेडी-वार्डर एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराई, मैं और भी चकराई। मैंने फिर पूछा—"क्या बात है ?"

मुहम्मदी—"जो लड़कियाँ खूबसूरत होती हैं उन्हें आराम रहता है। उन्हें वह अपने पास से खिलाती हैं..."

इसके बाद जो-जो बातें उसने बतलाई, उन्हें सुनकर मैं काँप उठी...हे भगवान्... ! मैं उन बातों को लिख भी नहीं सकती। मैं कह नहीं सकती कि उनकी बातें कहाँ तक ठीक थीं, पर उनकी कल्पना से ही दिल घबराने लगता है।

मैंने पूछा—"क्या लेडी जेलर इन बातों को नहीं जानती ?"

मुहम्मदी—"सब जानती हैं।"

मैं—"फिर प्रबन्ध क्यों नहीं करती। यों तो बात-बात पर मार पड़े, तनहाई मिले और इधर ध्यान भी न दिया जावे।"

मुहम्मदी—"बीबी रिश्वत दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ है।"

मैं चुप हो गयी। इसके बाद मैं प्रश्न भी क्या करती। मुहम्मदी ने स्वयं ही कहना शुरू किया—"क़ैदिनें दूसरे के बच्चों को ज़िद से हौज में गिरा देती हैं; यहाँ तक कि एक बच्चा मर भी गया था; पर जिसने गिराया था, लेडी वार्डर उस पर मेहरबान थीं; सबने यह कहकर छुट्टी ली, कि बच्चा खुद ही गिर कर मर गया।"

इसी प्रकार बहुत देर तक यह अपनी कहानी कहती रही। इतने में द्वार पुनः खड़खड़ाया गया, लेडी वार्डर ने आवाज़ दी—"चलो रोटी ले लो।"

5

जेल जीवन की झलक

अब तक तो वहाँ दो ही स्त्रियाँ थीं, और दोनों भी पहली बार जेल आयी थी, उनका स्वभाव पहचानने में मुझे कुछ विशेष कठिनता नहीं हुई थी; पर अब नयी आयी हुई स्त्री साल भर फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में रह कर अपराधों में निपुणता प्राप्त करके आयी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों उसे अपने क़ैदी होने का रंज ही न था। वह अपने दुःख को भुला कर आमोद-प्रमोद में मस्त रहती थी। यों तो भूल जाने का स्वभाव मनुष्य को परमात्मा की ओर से दिया गया है। यदि मनुष्य अपने प्रत्येक कष्ट और मुसीबतें सदा याद रखता है, तो प्रत्येक मनुष्य हर समय आँसू बहाता ही नज़र आता।

हमारी वार्डर को खुद भी नाच और गान का शौक था; वह खुद तो इसमें हिस्सा नहीं लेती थी, पर दूसरी क़ैदिनों का नाच और गान होने लगा। नाचने और गाने के भी कई ढंग होते हैं। ऐसा अश्लील नाच और गान मुझे अपनी आयु में क्यों देखने और सुनने को मिला था? वैसे तो दुर्भाग्य से हमारे देश का कोई प्रान्त अश्लील गाने और सुनने से न बचा होगा। पर यह अश्लीलता अभी तक गाँवों के गान और नाचों में बहुत कम, यहाँ तक कि नहीं के बराबर ही पायी जाती है। यह गुण तो शहरों में ही अधिक पाये जाते हैं। मेरे पिता आर्य समाजी विचारों के हैं, वह प्रत्येक बात और सिद्धांत को पूरी तरह अमल में लाने और उसका संस्कार अपनी सन्तान पर डालने का प्रयत्न करते हैं। मेरी स्वर्गीया माताजी भी इस काम में उनकी पूरी सहयोगिनी थीं। मुझे याद है—हमें कभी किसी शादी में गाने के स्थान पर नहीं जाने दिया जाता था। यहाँ तक कि विवाह से पूर्व मैंने एक भी ड्रामा थियेटर अच्छा या बुरा नहीं देखा था। किसी भी तरह के नाचादि के देखने का मौक़ा ही क्या मिलता ? वैसे मैं नृत्य, गान के विरुद्ध नहीं। वे उच्च श्रेणी की कलाएँ हैं। प्राचीन काल में भारत में इनका अच्छा प्रचार भी था। और यहाँ तक कि नृत्य गान का सम्बन्ध

धार्मिक कार्यों में विशेषकर भक्ति मार्ग से था। पर जिस नृत्य गान का मैं वर्णन कर रही हूँ वह तो बहुत अश्लील और गन्दा था, कोई भी सभ्य व्यक्ति इसे देखना पसन्द नहीं कर सकता। खैर, यह सब राग और नाच रोज़ होने लगे, और धीरे-धीरे उनके साथ लड़ाई-झगड़े का जन्म भी हो गया। अश्लीलता में जो कसर रह गयी थी वह यहाँ पूरी हो गयी। अब उन कैदिनों का सारा दिन गाली बकने, लड़ने या गन्दे राग गाने में गुज़रने लगा। कभी-कभी रोना-धोना भी शुरू हो जाता था, लड़ाई का अन्त तो प्रायः ऊँचे स्वर से रोने ही में होता था। ख़ैर, जो कुछ भी हो, वह सब थीं तो एक ही स्वभाव की; पर मैं अकेली थी। एक रात तो उन्होंने गज़ब ही कर दिया, अभी ताला बन्द ही हुआ था, एक स्त्री को शौक सवार हुआ। उसने कहा—"चलो आज सुरमा बना कर लगावें। जिन्होंने सरसों का तेल, जो उन्हें सर पर लगाने को मिला था, लेकर जैसे-तैसे कालख तैयार की; अब लड़ाई शुरू हुई किसी ने ज्यादा लगा लिया, किसी को कम मिला, बस दोनों ने कमर बाँध कर युद्धक्षेत्र में पदार्पण किया। मेरी मुसीबत आ गयी। मैं भी उसी बैरक में रहती थी, मेरी बड़ी इच्छा हुई कि इन लोगों को शान्त करा दूँ। कहीं वार्डर ने पेश कर दिया, तो मुफ़्त में मारी जावेंगी; पर वहाँ तो दोनों ही एक दूसरे को फाड़ खाने को तैयार हो रही थीं। रात को बारह बजे का घण्टा लगा, तब तो मुझसे न रहा गया, मैंने उन लोगों को चुप रहने को कहा।

एक ने जवाब दिया, "तुम्हीं बता दो, मैंने क्या कहा है ?"

दूसरी ने झट से कहा, "तो मैंने ही क्या कह दिया ?"

मैं चुप हो गयी। मैं उनकी इस दलील का जवाब क्या देती। वह फिर उसी तरह लड़ने लगीं। मजबूर होकर मुझे वार्डर को आवाज़ देनी पड़ी किन्तु वहाँ और ही तमाशा हो गया। उन दोनों में से एक ने उठकर स्वयं वार्डर को रो-रोकर बुलाना शुरू किया। ख़ैर, उनकी खुशकिस्मती से वार्डर ने सुना ही नहीं या रात में दरवाज़ा खोलने की परेशानी से बचने के लिए बोली ही नहीं। मैंने कहा—"देखो वार्डर के आने पर मैं तुम दोनों की बात कह दूँगी। इससे अच्छा है चुप हो जाओ।" इस बात का असर हो गया और वह दोनों कहीं एक बजे जाकर सो गयी।

वे लोग तो लड़-लड़ाई कर बेफिकरी से सो गयी। पर यहाँ नींद हराम हो गयी। सारी रात चिन्ता में ही व्यतीत हुई, हाय ! इस तरह कैसे दिन कटेंगे। इन लोगों से तो अलग ही अच्छी थी पर अलग रहने की भी इच्छा नहीं होती थी, क्योंकि जेल

के भीतर, जहाँ अपना कोई रक्षक नहीं, कोई सहायक पर नहीं, ख़ास तौर से जब अपने कमरों की तालियाँ भी दूसरों के हाथ में रहती हैं, मुझे अकेले रहना मुनासिब न मालूम पड़ा। मैंने हाथ जोड़ कर परमात्मा से प्रार्थना शुरू की—"हे प्रभो ! मेरी किसी साथिन को और यहाँ भेज दो।" सम्भवतः मेरी प्रार्थना में बल न था। मुझे घोर तपस्या की ज़रूरत थी इसलिए मुझे तीन महीने अपनी राजनैतिक क़ैदी बहनों के आने तक ठीक इसी तरह अकेले इन्हीं लोगों की संगति में गुज़ारने पड़े।

जेल में मुझे खाने-पीने की प्रायः कभी तकलीफ़ न हुई। कपड़े मेरे घर से आते थे। पढ़ने के लिए पुस्तकें और लिखने के लिए एक कापी भी मिल गयी थी; सिलाई आदि का सामान भी घर से मँगा लिया था। सप्ताह में एक बार और बाद में दो वार, एक हिन्दी अख़बार भी जेल द्वारा मिलने लगा था। पहले एक सप्ताह तक तो खाना बाहर से पक कर आता था, पर उसके बाद मैंने खुद बनाना शुरू कर दिया। अब कोई तक़लीफ़ थी तो अकेलेपन की और उन स्त्रियों की बुरी संगति की। मैंने अपना प्रोग्राम बना लिया, और उसी के अनुसार सारा दिन व्यतीत करने लगी। इसी तरह एक सप्ताह जेल में रहते-रहते हो गया।

धीरे-धीरे दिल भी लगने लगा ! जेलर को कह देने से अब रात को वार्ड भी देर से बन्द होने लगा। इससे सूर्यास्त हो जाने पर बाहर बैठने या घूमने का मौक़ा भी मिल जाता था। गर्मी उन दिनों अधिक थी, दिन भर आँखों से मेहनत करने की वजह से आँखों में रोहे पड़ गए, सर दर्द भी खूब रहने लगा। मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहेब को अपनी इस बीमारी की सूचना दी। अतः एक दिन प्रातः मुझे दफ़्तर में बुलाया गया। मैं लेडी वार्डर के साथ दफ़्तर पहुँची !

मिस्टर रहमान जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट दफ़्तर में बैठे थे। उन्होंने मुझसे पूछा—

"क्या आपकी आँखों में तकलीफ़ है ?"

मैं—"जी हाँ !"

मि. रहमान—"क्या तकलीफ़ है ?"

मैंने सब तकलीफ़ बतला दी।

मि. रहमान ने कहा—"अच्छा कल या परसों आपकी आँखें देखी जावेंगी। शायद आपको ऐनक लेनी होगी।।"

मैंने कहा—"मैं किसी विशेषज्ञ (Specialist) डाक्टर से अपनी आँखे दिखाना चाहती हूँ। आप कैप्टन टण्डन का प्रबन्ध कर दें। वह आँखों के विशेष

डाक्टर हैं।"

मि. रहमान–"क्यों, ख़ास टण्डन ही क्यों ? आपको आँखें दिखाने से मतलब है न कि डाक्टर से।"

मैं–"मेरा मतलब आँखों के विशेष डॉक्टर से है।''

मि रहमान–"फ़ीस कौन देगा ?''

मैं–"मैं जेल में हूँ, मेरा इलाज जेल से नियम-पूर्वक होना चाहिए।"

मि. रहमान–"जेल किसी के दाँतों और आँखों का ज़िम्मेवार नहीं।"

मैं–"नहीं तो नहीं सही। मैं फिर दिखा लूँगी।"

मि. रहमान–"कहाँ से दिखा लोगी ?"

मैं–"जब छः महीने बाद जेल से घर जाऊँगी।"

मि. रहमान ने कहा–"अच्छा जाइए।"

मैं चुपचाप अपने वार्ड में चली आयी; मुझे चिंता थी कि यदि आँखें इसी प्रकार ख़राब होती गयीं तो क्या होगा? पर मैं समझती थी कि जेल की ड्यूटी है कि मेरी आँखें किसी योग्य डॉक्टर को दिखायी जावें। कुछ दिन बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट ने स्वयं ही किसी आँखों के विशेषज्ञ यूरोपियन डॉक्टर को लाकर दिखा दी। मेरे लिए दवा भी तजवीज़ कर दी गयी। अगले दिन कलक्टर साहेब जेल निरीक्षण को आ रहे थे। मैंने प्रायः यही देखा कि जब-जब जेल देखने को कोई अफ़सर आने वाला होता था, तो क़ैदियों की माँग पूरी करने का यत्न किया जाता था।

दूसरे दिन प्रातः से ही सारे वार्ड में धूम मच गयी कि साहब आ रहे हैं। क़ैदियों को विशेष सफ़ाई आदि करने की आज्ञा मिली। परेड के लिए लाइनें बनने लगीं। ठीक 9 बजे हमारा वार्ड खुला। सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ कलक्टर साहब ने भीतर प्रवेश किया। बिना दूसरी क़ैदिनों को देखे वह मेरी बैरिक के पास पहुँचे। मैं खड़ी हो गयी। कलक्टर ने पूछा–

"क्या आप सकुशल हैं ?"

मैं–"जी हाँ।"

कलक्टर–"कोई तकलीफ़ तो नहीं ?''

मैं–"नहीं जी।"

कलक्टर–"आप इस समय क्या कर रही थीं ?''

मैंने अपना तकिया, ज़िसमें जाली डाल रही थी, दिखा दिया।

कलक्टर–"अच्छा गुड मॉर्निंग !" मैं भीतर चली गयी और कलक्टर दूसरी क़ैदिनों से बिना कुछ पूछे ही लौट गये। सुपरिण्टेण्डेण्ट रहमान साहेब ने पास से गुज़रती हुई एक क़ैदिन को कुत्ते की तरह धुतकार ज़रूर दिया। बस, यही उन लोगों की जेल परीक्षा थी।

कलक्टर के आने के दिन से भी बढ़ कर धूम-धाम का वह दिन था, जब जेल में इंस्पेक्टर जनरल आफ़ प्रिज़िन्स (Inspector General of Prisons) अर्थात प्रान्त का सबसे बड़ा जेल का अफ़सर आने वाला था। सारी जेल में सफ़ाई कराई गयी। जगह-जगह लिपाई पुताई और सफ़ेदी की गयी। दो दिन पहले से जेल के किसी कर्मचारी को दम भरने की फुर्सत न थी। अन्ततः 26 अगस्त को इंस्पेक्टर जनरल का पदार्पण हुआ। फीमेल वार्ड में जब आये तो स्वभावतः मुझे उनके आगे पेश किया गया उन्होंने मामूली प्रश्न किया–

"आप अच्छी तरह हैं ? किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं ?"

मैं–"अच्छी तरह हूँ अगर आप चर्ख़ा दिला सकें तो बड़ी कृपा हो, जिससे मैं कुछ कात कर समय निकाल सकूँ।"

इंस्पेक्टर जनरल–"चर्ख़ा किसी कैदी को नहीं दिया जा सकता !"

मैं–"जहाँ तक मैंने सुना है और जेलों में 'ए' क्लास के क़ैदियों को चर्ख़ा दे दिया जाता है।"

इंस्पेक्टर जनरल–"अच्छा हम इसकी ख़बर करेगा और कोई तकलीफ़ तो नहीं ?"

मैं–"यहाँ पर मैं अकेली हूँ, पन्द्रह दिन में एक बार मिलना होता है। मुझे चिट्ठी लिखने के बदले एक बार अधिक मिलने को इज़ाज़त दे दी जावें।

इंस्पेक्टर जनरल–"अच्छा आपको लखनऊ भेज दिया जावेगा। वहाँ आपके साथ की दूसरी और औरतें भी हैं।"

इंस्पेक्टर जनरल इतना कह कर सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ मेरे लखनऊ भेजने के विषय मे बातचीत करते हुए चले गये। उनके चले जाने के बाद मैं चिन्ता में पड़ गयी कि कहीं सचमुच मुझे लखनऊ जाने की चिन्ता से मैं घबरा उठी। इसमे सन्देह नहीं कि एकान्तवास का घोर कष्ट मुझे मेरठ जेल में था। प्रोफ़ेसर जी बार-बार कहते थे कि तुम लखनऊ चली जाओ तो अच्छा रहे। एकान्तवास का असर मेरे स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा था, पर फिर भी मुझे मेरठ से मोह था। मेरे जीवन का

नवीन अध्याय मेरठ में आरम्भ हुआ था। अपने सुदूरवर्ती काश्मीर के घर को छोड़कर मैंने मेरठ में अपना घर बनाया था। जेल में होते हुए भी मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं घर के नज़दीक हूँ। घर के वायुमंडल में हूँ इसलिए मैं मेरठ छोड़ कर लखनऊ जाना नहीं चाहती थी।

अगली बार जब प्रोफ़ेसर जी मिलने आये तो उनसे मुझे यह जान कर बहुत संतोष हुआ कि इंस्पेक्टर जेनरल ने मुझे लखनऊ भेजने का विचार छोड़ दिया है। फिर मैंने चर्खे़ के विषय में पूछा क्योंकि मैं समझती थी कि मेरे एकान्त जीवन में चर्ख़ा ही एकमात्र सहारा होगा। पर मुझे बताया गया कि इंस्पेटकर जनरल ने मुझे चर्ख़ा देने के बदले और जेलों में भी सरक्यूलर भेज दिया कि जिन-जिन सत्याग्रही क़ैदियों को चर्ख़ा दिया गया हो उन सबसे छीन लिया जावे ! मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ। इससे तो अच्छा था कि मैं अपने लिए चर्ख़ा न माँगती।

पत्र-व्यवहार के बदले एक अधिक मुलाक़ात करा दी जावे यह बात जेल के नियमानुकूल थी और जेल-मनुएल में दर्ज थी। मैंने सुना कि पंजाब की जेलों में ऐसी इजाज़त दे भी दी गयी थीं। प्रोफ़ेसर जी ने इस विषय में अख़बारों में भी लिखा और इंस्पेक्टर जनरल को भी लिखा। परन्तु अन्त में इंसपेक्टर जेनरल ने गवर्नमेन्ट का आर्डर मँगा लिया कि यह क़ायदा 'सी' क्लास वालों के लिये समझा जावे, अर्थात् यह 'ए' व 'बी' क्लास पर लागू न हो। पर मुझे अच्छी तरह पत है कि 'सी' क्लास वाले सत्याग्रही क़ैदियों को भी इसका फ़ायदा कभी नहीं दिया गया। अन्त में मैंने यह सोच कर सन्तोष कर लिया कि आख़िरकार हम लोग जेल में कष्ट सहने आये हैं, मेरी तनहाई भी उस कष्ट का एक भाग है, जो हम मातृभूमि के तर्पण के लिये कर रहे हैं।

मेरे दूसरे सत्याग्रही भाइयों को भी इस बात की काफ़ी चिन्ता थी कि मैं जेल के कोने में अकेली पड़ी हुई हूँ। मैंने सुना कि पं. प्यारेलाल शर्मा, काज़ी नज़मुद्दीन और विशेष कर मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ने जब वे मेरठ जेल आ गये तो इस बात के लिए प्रयत्न किया कि मुझे कभी-कभी अपने सत्याग्रही क़ैदी भाइयों से मिलने की आज्ञा हो जाये। परन्तु जेल के अधिकारियों ने इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया। तीन मास तक—जब तक कि दूसरी सत्याग्रही बहनें जेल में न आयी—मैंने एकान्त जीवन व्यतीत किया। उन दिनों में मुझे पता चला कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिस प्रकार उसे रोटी, पानी और हवा की ज़रूरत है, उसी प्रकार अपने

साथियों की। उन दिनों में एकान्त जीवन से मुझे कितना ही कष्ट क्यों न हुआ हो, पर आज मैं अनुभव करती हूँ कि एकान्तवास से अपनी विचारधारा मे जो उत्तेजना मुझे प्राप्त हुई, वह उस कष्ट के बदले पर्याप्त पारितोषिक था।

मैंने इस परिच्छेद के प्रारम्भ में लिखा है कि मेरी जेल की साथिनों का जीवन किस प्रकार का था। इन लोगों का जीवन कितना घृणास्पद हो जाता है, इसकी कल्पना करने और देखने में बहुत भेद है।

मेरे साथ केवल तीन ही स्त्रियाँ शुरू में थीं, जिनमें फतहगढ़ में सज़ा काट कर आयी हुई शीघ्र छूट गयी बाक़ी रहीं दो; उनमें से एक का शीघ्र ही बच्चा होने वाला था इसलिए उसे काम न करता पड़ना था। दूसरी स्त्री का काम वार्ड में झाड़ू लगाना और मेरे बर्तन आदि धोना था। पर एक समय ऐसा आया जब एक साथ जेल में पन्द्रह स्त्रियाँ हो गयी। सभी विचाराधीन[1] अभियुक्त (under trial) थी। ऐसे क़ैदियों के लिए कोई काम देने की आज्ञा नहीं है। अतः उन स्त्रियों में बहुत युद्ध होता था। केवल एक स्त्री झाड़ू लगाने को थी, वह जब झाड़ू लगाती, तो तमाम दूसरी कैदिनों को गालियाँ देती थी। कभी-कभी तो इसी लड़ाई में साँझ हो जाती थी, जब कभी सुलह रहती, तो सभी स्त्रियाँ मिल मिलाकर प्रातः ही झाड़ू आदि लगा कर ख़ाली हो जाती। चने बँटने का समय आ जाता यह भी एक पूरी लड़ाई का सामान था। चने केवल उन्हीं को बँटते हैं जिन्हें सज़ा मिल चुकी हो, बाँटने वाले भी तमाशा देखते थे; किसी एक अण्डर ट्रायल को ज़रा से दे दिये—बस वहीं सबका मुँह सूज गया; ताने शुरू हुए— "चने बाँटने वालों की आँखों में जो जँच जावे" इत्यादि ! उन लोगों में विवेक शक्ति होती ही नहीं, या जेल में पहुँचते ही लोप हो जाती है। संख्या अधिक हो जाने पर प्रायः उन लोगों का निम्न प्रोग्राम रहने लगा ! प्रातः बैरक खुलने पर उठती और शौचादि से निवृत्त होकर कुछ क़ैदिनें तो मिल-मिला कर झाड़ू लगातीं शेष ख़ाली एक ओर बैठ कर बातें करतीं। अधिक लड़ाई फ़िसाद होने के भय से रोज़ परेड लगाई जाने लगी। जिसका मतलब यह था कि उन सबको एक क़तार में बैठा दिया जाता था और वहीं बैठ कर तरह-तरह की बातें होती। चने मिल जाने पर अगर आपस में सब बाँट लेतीं तो शान्ति से बातें होती रहती

---

1 विचाराधीन अभियुक्त अर्थात् जिन पर मुक़दमा चल रहा था और जिन्हें सज़ा न मिली थी।

थी। कभी-कभी उन्हें अपने घरों की याद आ जाती–तो बड़े करुणाजनक शब्दों में अपनी कहानी रोते-रोते सुनाने लगतीं। एक के बाद एक सभी अपनी अपी कथा सुनातीं। उस समय मेरा ध्यान भी सुनने में लग जाता था मुझे एक दिन अपनी ओर आकर्षित देखकर उनमें से एक बोल उठी–

"क्या इन्हें जेल आने का दुःख नहीं है ?"

दूसरी–"वाह, दुःख कैसे नहीं होगा जल्दबाज़ी करके आ तो गयीं, पर अब क्या करें।"

पहली– "हाँ, तभी तो जब देखो अलग पड़ी रहती है, किसी से बात तक तो करती नहीं।"

इतना कह कर वह स्त्री बड़ी मैत्री भरे भाव से मेरी ओर देखने लगी। इस पर उनमें से एक फिर कहने लगी–

"बहन, तुम्हें क्या लेना था, अच्छा ही काम था तो मर्द करते रहते; देखो, दुनिया तो तमाशा देखा करती है, इतने दिन तुम्हें हो गये कोई दूसरी आयी भी ?"

मैं इन्हें क्या समझाती !

चने बाँटने के बाद रोज़ इसी तरह बातें हुआ करतीं। जब दस बज जाते, कोई स्त्री नहाने जाती नहीं तो वही गप्प-बाजी जारी रहती, वही चुग़ली और ईर्ष्या द्वेष से भरी बातें। कभी हँसतीं और कभी रोतीं, फिर खाना बँट जाता और लेडी वार्डर हम लोगों को ताले में बन्द करके खाना खाने के लिए चली जाती। यह समय जेल के रोटी पकाने वालों और जेल वालों को कोसने का हुआ करता था; रोटियाँ कच्ची हैं; दाल गली नहीं; तेल कच्चा डाल दिया है, मिर्च बहुत है। इसी तरह की बीसों बातें कही जातीं। दो बजे तक लेडी वार्डर बाहर रहती थी, तब तक सोना और खाना समाप्त हो जाता था। जमादारिन सीधी बैरक में चली आती वह किसी से सिर दबवाती, किसी से पाँव। जो जो इस सेवा में भाग लेतीं उनसे जमादारिन का सलूक अच्छा रहता था। बीच-बीच में गाना भी होने लगता था और लेडी वार्डर के कहने से नाचना भी इसी तरह पाँच बज जाते। वार्ड खुलता तो सफ़ाई के लिए भंगी भीतर आता। प्रायः उसी के साथ रोटी बाँटने वाले भी आ जाया करते थे। पहले तो रोटी बाँटने के बाद ही वार्डर बैरक बन्द कर जाते थे, पर जब से मैंने एतराज़ किया तो वार्ड रात को आठ और कभी नौ बजे तक खुला रहने लगा। इससे इन स्त्रियों को भी शाम को खुले आँगन में बैठने का मौक़ा मिलने लगा। खाना लेकर वह सब एक

जगह बैठ जातीं और वार्ड बन्द होने तक वहीं बैठी बातें करती रहती थीं।

प्रायः लेडी वार्डर का पेट भी उन्हीं अभागिनी क़ैदिनों की रोटियों से भर जाता था। जो स्त्री उसे अपनी रोटियों में से एक दो नहीं दे देती थी, उसको लेडी वार्डर को कुदृष्टि का शिकार होना पड़ता था। भोजन के बाद, में वार्ड बन्द हो जाता और रात को पुनः कभी लड़ना, और कभी गाना होता। कभी-कभी वे एक दूसरे को कहानियाँ भी सुनाती थीं। एक रात एक भूतों की कहानी कहने लगी। सुनाने वालियों में से एक ने कहा–

"जमादारिन कहती है कि इस वार्ड में जिन पीर जी की क़बर है। वह पीरजी सोमवार और शुक्रवार के दिन नज़र आया करते हैं।''

पहली क़ैदिन–"हाँ, सच तो है।'' पीर जी बिल्ली की सवारी करते हैं। अगर जुमा या पीर की रात को बारह बजे कोई उठ कर क़बर की ओर देखे तो मालूम हो जावे। उस वक्त वह क़बर पर नमाज़ पढ़ते हैं। उनकी सवारी इधर-उधर घूमा करती है, तब जो चाहो मुराद माँग लो, पूरी हो जावेगी।

मैंने कहा–"यह कैसे हो सकता है ?''

कैदिन–मैं दिखा दूँगी ? जमादारिन से पूछ लेना।

बात दूसरे दिन पर टल गयी। जब दूसरे दिन जमादारिन आयी, तो मैंने भी पूछा–"क्या यहाँ कोई पीर जी भी आया करते हैं ?'' जमादारिन, "हाँ हमने तो अपनी आँखों से देखे हैं।" एक कैदिन ने जिस पर खून का मुक़दमा था दिन में ही उन्हें नमाज़ पढ़ते देखा था। वह रोज़ क़बर पर दूध चढ़ाने लगी पीर जी की उस पर ऐसी मेहरबानी हुई कि वह कैदिन साफ़ छूट गयी।''

वह बात तो वहीं समाप्त हो गयी, पर कुछ दिन बाद मैं एक शुक्र की रात को अपनी वैरक में पड़ी सो रही थी। सहसा एक क़ैदिन काँपती हुई आवाज़ में मुझे ज़ोर से पुकारा–"बीबी ! बीबी !!''

मैंने आधी नींद में पूछा, "क्या है ?''

क़ैदिन– "तुम्हारे सिर पर पीर जी की सवारी... मैं अचानक ऐसा सुनते ही काँप कर उठ बैठी, मैंने देखा मेरे तकिये के पास से एक मोटी सी बिल्ली निकल गयी। मैं चुपचाप बैठी रही, उस क़ैदिन ने फिर कहा–

"बीबी पीर जी तुम पर खुश हैं। जो चाहो माँग लो।"

मैं तो चुप रही पर उस क़ैदिन ने स्वयं ही माँगना शुरू कर दिया। वह क़ैदिन

मुसलमान थी। वह प्रार्थना करने लगी—

"ऐ परवरदिगार के दूत ! मुझे बख्श। मेरे दीन भाइयों और बहनों को इन ज़ालिम जेल वालों के फन्दे से छुड़ा।" उस वक़्त उसने नमाज़ पढ़ी और जाने क्या-क्या किया। मैं वैसी ही बैठी रही, धीरे-धीरे सब मामला समझ में आने लगा मैंने लेटते लेटते कहा :—

"कुछ भी तो बात नहीं थी, यूँ ही एक बिल्ली लाँघ गयी है।"

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, मेरा अनुभव मुझसे बलात् कहलवाने लगा कि किसी भी व्यक्ति को चाहे उसने कितना ही भयंकर अपराध किया हो हिन्दुस्तान के इन जेलों में नहीं भेजना चाहिए। कई बार यह भी ख्याल आता कि ऐसे लोगों के सुधार का क्या उपाय रहेगा। मैं सोचती कि ऐसे शिक्षणालय या कारख़ाने होने चाहिए, जहाँ अच्छे-अच्छे सभ्य लोग आकर काम सिखायें, पढ़ायें और सदाचार की शिक्षा दें। मैं बैठे-बैठे उत्तम विद्यालयों और कारख़ानों की कल्पना करने लगती। बड़ा सुन्दर मानसिक चित्र बनाने लगती। कल्पना के चित्र में मुझे नज़र आता कि एक बड़ा विशाल भवन है, जेल ही की तरह उसकी ऊँची-ऊँची दीवारे हैं पर भीतर से वैसा मैला और गन्दा नहीं। स्वच्छ और रमणीय स्थान हैं। वही अलग-अलग विभाग बने हैं, जहाँ तरह-तरह के काम सिखाने का इन्तज़ाम है, वहाँ कैदी साफ़ कपड़े पहने कर रहते हैं। ऐसी ही लम्बी-लम्बी कल्पनाओं के प्रवाह में बह कर मैं अपना समय बिताया करती पर जब सहसा यह विचार आता कि हम पराधीन हैं, गुलाम हैं। हमारे साथ में कुछ भी नहीं तो सारा खेल, सारी कल्पना मेरे अन्तस्थल में ही लीन हो जाती।

6

संजीवनी सुधा

जेल की प्रत्येक बैरक यहाँ तक लुहार-ख़ाना और कुम्हार-ख़ाना तक राजनैतिक क़ैदियों से ठसाठस भर चुके थे। राजनैतिक क़ैदियों के जेल के कोने-कोने में फैल जाने से, जेल एक तपोवन-सा बन गया था। प्रातःकाल की शीतल सुगन्धित वायु के साथ ही चारों ओर से राष्ट्रीय गान सुनाई देने लगता था। सभी अपने अपने वार्डों में एक चित्त होकर मातृ-वन्दना के साथ अपने झण्डे के लिए नित्य नये उत्साह से प्रतिज्ञाएँ किया करते थे। आहा, वहाँ एक राग कितना प्यारा लगता था। इस गीत की आवाज़ कान में पड़ते ही जेल का सारा दुःख न जाने कहाँ चला जाता था। जेल के सारे कष्टों में यह राष्ट्रीय गान मेरे लिए संजीवनी सुधा का काम करता था। उसकी तान पर हृदय तन्त्री के तार बज उठते थे और सोती हुई भावनाएँ जाग जाती थीं। गीत उसी तरह चलता जाता था। मैं 'फ़ीमेल-वार्ड' की संकुचित सी चारदीवारी में बन्द रहती और दीवार के बाहर चारों ओर से राष्ट्र सैनिकों द्वारा गाया जा रहा राष्ट्रीय गीत अस्पष्ट, धीमे परन्तु मधुर अत्यन्त मधुर रूप में मेरे कानों में पड़ता था। उस स्वर्गीय गान की एक कड़ी के साथ मेरा दिल नाचने लगता। उस समय ऐसा जान पड़ता जैसे स्वर्ग के देवता मधुर स्वर में मेरी मातृभूमि के राष्ट्रीय झण्डे की स्तुति कर रहे हैं। मैं तन्मय होकर सुनती, न जाने कौन-कौन मिल कर गा रहे होते थे–

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।
सदा शक्ति बरसाने वाला।
प्रेम सुधा सरसाने वाला।।
वीरों को हर्षाने वाला।

मातृभूमि का तन मन सारा।।
इसकी शान न जाने पावे,
चाहे जान भले ही जावे।
विश्व विजय करके दिखलावे,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा।।

इस झण्डे के नीचे निर्भय,
लें स्वराज यह अविचल निश्चय।
बोलो भारत माता की जय,
स्वतन्त्रता हो ध्येय हमारा।
प्यारा भारत देश हमारा।। विजयी।।

कोई अस्पृश्य शक्ति मातृभूति के झण्डे की सम्मान रक्षा के लिए मानों बलात् मुझे प्रेरित करती थी। उसी समय गाने वाले अदृश्य देव, गीत की अगली कड़ियाँ गाने लगते थे—

आओ प्यारे वीरों आओ,
देश जाति पर बलि-बलि जाओ।
एक साथ सब मिल कर गाओ।

इस गान में सचमुच विचित्र उत्तेजक शक्ति छिपी है! इसे सुनते ही हृदय दोगुना हो जाता था। और मैं बार-बार उसी मस्ती में गुनगुनाने लगती थी—

प्यारा भारत देश हमारा,
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

बस ये कड़ियाँ गुनगुनाते ही हृदय पर आनन्द का नशा-सा छा जाता था। मेरा तो जब हृदय अशान्त हो जाता और अब जेल का एकान्त जीवन असह्य हो उठता, तभी यह राग, यह मधुर शक्तिदायिनी सुधा, मेरी उदासी दूर कर मुझे उत्साहित कर देती थी। बैरक में बैठे हुए जब कभी यह राग सुनाई देता था तो सहसा, बिना इच्छा किये, मैं एक जोश और मस्ती में बैरक से बाहर निकल आती। मुझे कोई प्रबल इच्छा पागल बना देती। जी चाहता है कि मैं भी ऊँची आवाज़ में इसी तरह गाऊँ, पर मैं तो अकेली थी। समझ नहीं आता था कि मैं अपनी यह साध कैसे पूरी करूँ?

गाना प्रातः और सायं दोनों समय होता था। अभी एक वार्ड से गाने की आवाज़ आ ही रही होती थी कि दूसरे वार्ड वाले भी गाना शुरू कर देते थे। तब सारे जेल में एक ही गीत सुनाई देने लगता था–

"झण्डा ऊँचा रहे हमारा !"

अन्त में अनन्त शान्ति और शक्ति दायक जयघोष होते थे–

''भारत माता की जय हो।''

''तिरंगे झण्डे की जय हो।''

इसके बाद 'बन्देमातरम्' के ऊँचे जयघोष से नौकरशाही का वह कठोर-दुर्ग मानो काँप उठता था।

मेरे लिए जेल के सारे कष्टों और मुसीबतों के होते हुए भी यदि कोई आनन्द था तो यही। कोई दिन ख़ाली न जाता था; जिस दिन कोई कार्यकर्त्ता या दस पाँच भारतमाता के मतवाले पुत्र इस तपोमय भूमि में स्वतन्त्रता देवी की उपासना करने न आते हों। आने और जाने वाले दोनों ही को स्वागत और विदाई इसी जयघोष के साथ मिला करती थी। दोपहर ग्यारह बजे से दो बजे तक प्रायः इस जयघोष से विदाई की सूचना और उसके बाद शाम तक इससे प्रायः आने वालों के स्वागत की सूचना मिला करती थी। जब तक मेरा कोई साथी नहीं था तब तक मुझे केवल इस राष्ट्रीय गान को सुन कर ही सन्तोष करना पड़ता था; पर उसके बाद जब और बहनें आ गयी तो फिर प्रातः और सायं हमारे वार्ड में भी यही पवित्र पाठ होने लगा और हमारे साथ की साधारण क़ैदी स्त्रियाँ भी इसमें सहयोग देने लगीं।

7

खून के आँसू

आह, वह क्या दिन कभी मुझे इस जीवन में भूल सकता है, जब अपनी माँ की गोद में लाड़ प्यार से पले बच्चों को तीस-तीस बेतों की मार खानी पड़ी थी ! मेरे जीवन की स्मृतियों की पुस्तक में वह एक लाल रक्तरंजित पृष्ठ है ! उन नवयुवकों के कोमल सुकुमार शरीर जानते भी न थे कि बेंत की चोट क्या होती है। वे अपने किसी पाप से नहीं, बल्कि मातृ-भूमि को प्यार करने के अपराध के कारण जेल में डाले गये थे। उफ़ ! आज भी मेरा दिल उसकी याद से काँप उठता है। मुझे ऐसा अनुभव होता है, जैसे अब भी 19 दिन से भूख हड़ताल किये हुए होने पर भी शान्तिशरण को अभी-अभी बेंतों की सज़ा दी गयी है और उसके कराहने की आवाज़ मेरे कानों में गूँज रही है।

29 अगस्त के प्रातः आठ बजे का समय था। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब अपनी मेज़ पर बैठे क़ैदियों का मुलाहिज़ा कर रहे थे, तभी जमादार अशरफ़ अली ने कुछ क़ैदियों के नाम पेश कर दिये। साहब ने पूछा–

"क्यों, क्या बात है ?"

साहब–"अच्छा सबको पेश करो"

जमादार–"साहब रात को गिनती नहीं होने दी; बहुत तंग करते हैं।"

अरे यह क्या ? एक बार ही ऊधम-सा मच गया। 'भारत माता की जय' के नाद के साथ ही साथ चीख़ने और चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं। मैं चौंक उठी–आज यह नयी बात क्या है। मैं दरवाज़े पर खड़ी हुई देखने लगी, पर सिवाय शोर के कुछ सुनाई न दिया। अचानक जेल के ख़तरे का घण्टा बजने लगा। क़ैदी शीघ्रता से बैरकों में ठूँसे जाने लगे और शीघ्र ही हुल्लड़ भी शान्त हो गया। जेल में सन्नाटा छा गया। अचानक चीख़ने की आवाज़ें आने लगीं और चीख़ने से भी ज़्यादा ज़ोर से से बेतों के मारने की सड़सड़ाहट सुनाई देने लगी। किसी ने

कहा—राजनैतिक क़ैदियों पर बेतों की मार पड़ रही है। दिन के बारह बजे थे ऊपर से धूप आग की तरह बरस रही थी और नीचे तपी हुई पृथ्वी पर क्रूर राक्षस सिपाही स्वयंसेवकों के नंगे बदन पर बेतों की बौछार करने लगे। खून की धाराएँ बह निकलीं। मांस की छोटी-छोटी बोटियाँ कट-कट कर गिरने लगीं, पर डाक्टर ने फिर भी हाथ उठा कर मना नहीं किया। मारते-मारते सिपाहियों के बेंत टूटने लगे और साहेब नये बेंत लाने की आज्ञा देते गये। क्रूरता और नृशंसता का इतना नग्नरूप! मनुष्य की निर्दयता का यह काला पर्दा !! हाय पीड़ा को भी दया आ गयी, अपनी मोहनी डाल उसने मार खाने वाले क़ैदियों को एक-एक करके बेसुध कर दिया। प्रकृति ने आँखें बन्द कर लीं। पक्षी यह दृश्य न देख सकने के कारण पास के पेड़ों से उड़ कर दूर चले गये, तब भी बेतों की, और ज़ोर-ज़ोर की गिनती करने की आवाज़ जारी थी। मैं दौड़कर फीमेल वार्ड के सीकचों के पास खड़ी हुई। मेरे हाथों में ताक़त न थी कि उन सीकचों को तोड़ सकूँ। एक साथ ही क्रोध, करुणा और ग्लानि के आवेश में मैं काँप उठी। मैं असहाय थी, क्या करती। मेरे मुँह से चीख़ें निकल उठीं—हे भगवान, तुम कहाँ हो ! उस समय मुझे पता चला कि खून के आँसू किसे कहते हैं? मैं पाषाण के समान स्तब्ध-वहाँ खड़ी हुई थी। इतने में वीर मुख्तार सिंह की बारी आयी। वार्डर ने उसके कपड़े उतार दिये। साहेब ने देखा—"ओह, यह तो वही मुख्तार सिंह है।"

लाइन इन्सपेक्टर ने पहचाना—"हाँ वही जो पुलिस की नौकरी छोड़ कर कांग्रेस में मिल गया है।" वीर मुख्तार सिंह को टिकटी से बाँध दिया गया। वीर मुख्तार सिंह तीस बेंतों के बाद भी होश में था, भारत माता का पवित्र और शान्तिदायक नाम उस समय भी उसकी जिह्वा पर था।

बेतों की इतनी क्रूर मार के बाद जब लाशों की तरह वे सब वीर फाँसीघर के सामने धूप में पटक दिये गये, तभी दो बजे खाना बँटने के लिए द्वार खुला। पीटे गये अधमरे भाइयों ने अपनी बहन को देखने के लिए प्रार्थना की। द्वार ज़रा-सी खोल दिया गया। मैंने बाहर झाँका—सभी खून में लथपथ थे। कोई होश में और कोई बेहोश, नंगी ज़मीन पर वे तेरह वीर पड़े हुए थे। श्री शान्तिशरण के पाँव में तब भी बेड़ी थी, उन्होंने हाथ जोड़ कर लेटे ही लेटे कहा—

"बहन जी ! आज आप के भाई बुरी तरह से पीटे गये हैं।"

मेरे पास कोई शब्द न था, मैं शान्ति से क्या कहती ! आह, मैंने स्वयं भी

तो इसी पत्थर के कलेजे से उनका आर्त्तनाद सुना था।"

मैंने कहा—''मुझे परमात्मा पर विश्वास है।'' इस घटना का न्याय वही करेगा। बेगुनाहों का ख़ून, कभी ख़ाली नहीं जाता !

बाद में मुझे अशरफ़ अली ने सारी घटना इस प्रकार सुनाई—

"रात का समय था, हम गिनती करने गये, तो इन लोगों ने गिनती नहीं होने दी। सुबह जब पेशी पर ले जाने लगे तो सारे बैरक के लोग चलने लगे। हमने रोका पर वे माने नहीं। इन्होंने दरवाज़े तोड़ डाले, तब साहेब ने ख़तरे का घंटा बजवा दिया। कलेक्टर साहब ने खुद मौक़ा देखकर उन्हें सज़ा दी है।'' नायब जेलर ने कहा—"फाटक के अस्सी डण्डे तोड़ डाले गये। तन्हाई की कोठरियाँ भी तोड़ दीं।"

पर वास्तव में बात क्या थी ? रोज़ शाम को जब क़ैदी लोग बैरक से बाहर प्रार्थना करने के लिए क़तार बना कर खड़े हो जाते थे, "तभी उनकी गिनती करके बैरकों में भेज दिया जाता था पर उस दिन (28 अगस्त) को उस समय गिनती नहीं ली गयी, उसके बाद जब रात को सात और आठ के बीच में गिनती करने वार्डर पहुँचे और उन्होंने दिन के काम से थके हुए क़ैदियों को बाहर आकर क़तार में खड़े होने को कहा तो क़ैदियों ने भीतर आकर गिनती कर लेने की प्रार्थना की।

वार्डर नहीं माने क़ैदी बाहर निकलने को तैयार नहीं हुए; तब उन्हें हाथ और पाँव से खींच कर बाहर ले जाने का यत्न किया गया। जब इसमें भी सफलता नहीं हुई, तब जैसे-तैसे गिनती कर, कुछ एक के नाम नोट करके वार्डर चले गये। क़ैदियों में सबको विश्वास हो गया कि सुबह हथकड़ी, बेड़ी, तनहाई और चक्की आदि का दण्ड मिलेगा। अगले दिन प्रातःकाल जब पेशी के लिये कुछ छाँटे हुए सत्याग्रहियों को पुकारा गया, तो सब ने एक साथ बाहर जाने की ज़िद की और सब बाहर निकल कर खड़े हो गये। ऐसी दशा में वार्डरों ने उन्हें भीतर बैरकों में बन्द करने का प्रयत्न किया। वे उन्हें धक्के दे-देकर खींच-खींच कर भीतर ले जाने लगे। साथ ही कई एक क़ैदियों को एक-एक महीना पहले छोड़ देने का लोभ दिया गया, जिससे वह उन क़ैदियों को भीतर डालने में मदद दें, पर परिणाम यह हुआ कि दूसरी बैरको के क़ैदी भी भाग-भाग कर बाहर आने लगे। इससे चोर, डाकू आदि अन्य क़ैदियों ने यह समझा कि यह समय जेल तोड़कर भागने का अच्छा है, उन्होंने भी इस गड़बड़ी में भाग लेना शुरू किया। कहा गया था कि सत्याग्रही क़ैदियों ने अस्सी लोहे के सींकचों के डंडे तोड़ डाले। यह तो बहुत अत्युक्ति थी, पर कुछ अवश्य टूटे थे। परन्तु

जिसने मेरठ जेल की 'सी' क्लास की बैरकें देखी है वह कह सकता है कि वह कितनी कच्ची हैं, इतनी गड़-बड़ में इतना शीघ्र निश्चय करना कितना कठिन है कि छड़ें तोड़ने में किसने हिस्सा लिया और किसने नहीं। यह भी याद रखना चाहिए कि राजनैतिक व दूसरे क़ैदी मिलाकर रखे जाते थे, और यह कहना कठिन है कि राजनैतिक क़ैदियों ने ही छड़ें तोड़ीं। ख़ास कर शान्तिशरण ने जो 19 दिन से भूखे तनहाइयों की कोठरी में बेड़ी पहने पड़े थे, किस तरह छड़ें तोड़ी होंगी और 16 साल के दुबले-पतले बनर्जी ने छड़ें तोड़ दी हों यह मुझे असम्भव प्रतीत होता है। फिर इतने लोगों में तेरह क़ैदी और वह भी सारे राजनैतिक किस तरह तीस-तीस बेंतों के लिए छाँट लिये गये। इसके अन्दर क्या भेद है, यह कलक्टर साहब को ही मालूम होगा।

इस घटना के सम्बन्ध में इतना कह देना अनुचित न होगा कि मेरठ के कलक्टर मि. पैडले घटनास्थल पर पहुँच गये थे और उन्होंने बेतों की सज़ा का दण्ड दिया था तथा इंस्पेक्टर जनरल ऑफ़ प्रिज़िन्स भी जो जेल का निरीक्षण करने इन दिनों आए हुए थे, इस अवसर पर जेल के अन्दर विद्यमान थे। परन्तु बेंतों की मार का निरीक्षण भार शायद ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट मि. कोगिल पर था जिनकी उपस्थिति में तेरह सत्याग्रहियों पर तीस-तीस बेंतों की मार पड़ी।

जेल मैनुएल में दिये नियमों के अनुसार जिसके बेंत लगाने हों उसकी शारीरिक अवस्था की डॉक्टरी परीक्षा होनी आवश्यक होती है कि वह बेंत लगाने योग्य है भी या नहीं। जैसा ऊपर आ चुका है कि इस घटना से पहले शान्तिशरण ने 19 दिन का उपवास किया था और वे तनहाई की कोठरी में बन्द थे और केवल दो दिन पूर्व उपवास तोड़ा था। ऐसी हालत में अन्दाज़ा किया जा सकता है कि श्री शान्तिशरण की क्या दशा हुई होगी, जब उन्हें तीस बेंतों की कठोर सज़ा दी गयी।

इस प्रसंग में यह भी उचित होगा यदि मैं उन सत्याग्रही वीरों के नाम यहाँ अंकित कर दूँ, जिन्हें तीस बेंतों की अमानुषिक सज़ा दी गई थी—

(1) श्री शान्तिशरण (2) श्री मनोहर लाल (3) श्री मुकुन्द लाल (4) श्री मेघराज (5) श्री बिहारी लाल (6) श्री श्याम सिंह (7) श्री हरवंश (8) श्री मुख्त्यार सिंह (9) श्री राजकुमार (10) श्री भागीरथ (11) श्री शिताबराय (12) श्री सूरजभान (13) श्री बी. एन. बनर्जी।

इस घटना के बाद भी जेल में आतंक छाया हुआ था। ऐसा यत्न किया जा

रहा था कि जेल की मक्खी भी उड़कर शहर की ओर न चली जावे, जिससे कि लोगों को इस घटना का पता चल सके।

स्वभावतः इस घटना के बाद मुझे अपने मुलाक़ात के दिन की बड़ी प्रतीक्षा हो रही थी। अन्ततः वह दिन आया जिस दिन मेरी मुलाक़ात हुआ करती थी। यह दिन किसी भी क़ैदी के लिए पर्व के दिन से कुछ कम न होता था। मुलाक़ात प्रायः शाम को तीन चार बजे के बीच में होती थी, पर हम लोग इसकी तैयारी प्रातः से ही करने लग जाती थीं। दिल में यह विचार आता,– आज यह पूछना है; वह चीज़ लाने को कहना है। कौन-कौन मिलने आवेगा ? मुझे याद है कि मैं हर बार प्रतीक्षा करती थी कि आज अमुक-अमुक बहन मुझसे मिलने आवेंगी। प्रतीक्षा का वक्त यों ही बहुत लम्बा हुआ करता है, परन्तु उस दिन एक के बाद एक करके पाँच बज गये पर कोई यह कहने नहीं आया–"चलो मिलने आये हैं।" उफ़ ! मेरी तबीयत भारी होने लगी, क्या वजह है ! कहीं बीमार तो नहीं, आह, आज ठीक पन्द्रह दिन के बाद मिलने का समय आया और उसमें भी…, मैं कभी बैरक में आती और कभी उठ कर द्वार की ओर देखने लगती। सहसा द्वार खटखटाया गया मेरा दिल धड़कने लगा। ज़रूर मेरी बुलाहट है। अपनी घबराहट छिपाने के लिए मैं बैरक में आकर, व्यर्थ ही एक पुस्तक खोल कर देखने लगी। मैंने देखा द्वार खुला और साथ ही वार्डर तथा एक क़ैदी खाने का कच्चा सामान रोज़ की तरह लेकर भीतर आया। मैं प्रतीक्षा करने लगी कि अभी वार्डर मुझसे कहेगा–"चलिए," पर नहीं वार्डर ने केवल यही कहा–

"खाने का सामान ले लो।" मैं नहीं कह सकती, कि कितने यत्न से अपने को सम्भाल कर मैंने वार्डर से कहा–"मैं सामान अभी नहीं लूँगी।"

वार्डर–"क्यों?"

मैंने पूछा–"आज अभी तक मुलाक़ात नहीं हुई। क्या बात है?"

वार्डर–"आज आपकी मुलाक़ात नहीं होगी।"

मैं–"क्यों ?"

वार्डर–"मुझे मालूम नहीं।"

मैं–"पहिले मुझे इसकी वजह बतला दी जावे ?"

वार्डर–"साहब ने मुलाक़ात बन्द करवा दी है, आप किसी से कहिये नहीं ?"

मैं–"अच्छा तुम जेलर से कह दो, जब तक मुझे मेरी मुलाक़ात बन्द करवाने

की वजह न बताई जावेगी, तब तक मैं खाना नहीं लूँगी।''

वार्डर चला गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे धरती घूम रही है। मैं बैठ गई। इधर जेलर या सुपरिण्टेण्डेण्ट दो-चार दिन से मेरे वार्ड में नहीं आये थे, और ना ही मुझे कोई ऐसी बात ही समझ में आती थी, जिससे मेरी मुलाकात रोकी जा सके।

जब तक मैं कुछ सोचूँ, द्वार फिर खुला और एक क्लर्क के साथ वही खाने का सामान फिर से वार्ड में आता दिखाई दिया। क्लर्क ने उसी वार्डर वाली बात को दुहराते हुए कहा—

"आप खाना ले लें।''

मैं—"पहले मेरे प्रश्न का उत्तर मिलना चाहिए।''

क्लर्क—"जेलर साहब कहते हैं कि आज आपका कोई रिश्तेदार मिलने नहीं आया।"

मुझे पता लग चुका था कि सुपरिण्टेण्डेण्ट की आज्ञा से ऐसा हो रहा है। मैंने कहा—

"आप ग़लत कहते हैं। आप लोगों ने मुलाक़ात बन्द की होगी; मुझे ऐसा ख्याल है; इसीलिए मैं वजह जानना चाहती हूँ।"

क्लर्क भी वार्डर की तरह सामान लेकर लौट गया। मैंने सोचा कि अब मुझे न प्रश्न का उत्तर मिलेगा और न भोजन ही। और अगर कुछ होगा तो यही कि मेरी सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास पेशी होगी। पर ऐसा नहीं हुआ। कोई सात बजे के क़रीब नायब जेलर साहब उसी आटे की पोटली को उठवा कर अन्दर आते हुए नज़र आये। उन्होंने आते ही खाना लेने के लिए समझाना शुरू किया; पर मेरे प्रश्न का उत्तर फिर भी नदारद था। हर बार यही उत्तर मिलता कि कोई मिलने नहीं आया। मुझे क्रोध आ गया और मैंने आवेश में कहा—"जेलर साहब, आप लोगों में से किसी को बिना इसका जवाब लिये आने की ज़रूरत नहीं। मैं खाना नहीं लूँगी।" नायब जेलर चला गया।

रात के नौ बज गये; मेरे प्रश्न का उत्तर नदारद था और इसी वजह से मैंने खाने का सामान भी न लिया। बैरक बन्द होने लगी। मैं भीतर आकर खाट पर बैठ गयी, इतने में वही क्लर्क आया और कहने लगा—"आपकी मुलाक़ात साहब ने तीन दिन के लिए रोक दी गयी है, केवल आपकी ही नहीं, सारे 'ए' और 'बी' क्लास के राजनैतिक क़ैदियों की और मेरठ कांस्पिरेंसी-केस वालों की मुलाकात भी

रोक दी गयी है। मेरा ख्याल है कि अब आपको इससे सन्तोष हो जाना चाहिए। आप अब खाना खा लें।'' और इतना कह कर बैरक बन्द कर दी गयी। खाने को तो कह दिया पर खाने का सामान देना वे भूल ही गये।

चार दिन के बाद फिर हमारी मुलाक़ात का दिन नियत किया गया। नायब जेलर के सामने बैठी मैं अपने सम्बन्धियों से बातें कर रही थी, बातों में ही प्रोफ़ेसर जी ने मुझसे पूछा—"बर्फ़ आता है या नहीं।''

मैंने कहा—"नहीं, शायद मेरठ कांस्पिरेंसी वालों का बन्द हो जाने से मेरा बर्फ़ भी बन्द हो गया है क्योंकि शायद ठेकेदार आध सेर बर्फ़ लाता होगा।''

सहसा नायब जेलर ने मुझे रोकते हुए कहा—"मिसेज शास्त्री, आप यह बात नहीं कर सकतीं। यह जेल की शिकायत है।''

मैं चुप हो गयी। दूसरी बातें होने लगीं। मैंने कहा—"मेरी आँखों में रोहे पड़ गये हैं; आजकल लिखना पढ़ना भी नहीं हो सकता।"

तब फिर प्रोफ़ेसर जी पूछ बैठे—"कैसे हो गये ?''

मैंने कहा—"पता नहीं, शायद धूप की गर्मी से। यों तो मैं दिन भर ही बैरक़, में रहती हूँ; पर उस दिन जब लड़कों को बेंत लगे, तो बारह बजे से दो बजे तक मैं भी द्वार के पास खड़ी रही थी शायद...''

प्रोफ़ेसर जी ने उत्सुकता से पूछा—"क्या तुमने शान्तिशरण को देखा है? सुना है उनकी दशा बहुत ख़राब है।''

नायब जेलर ने फिर कहा—"आप यह बात नहीं कर सकते।"

प्रोफ़ेसर जी ने पूछा—"तो कौन-सी बातें कर सकते हैं ? हर बात पर आप टोक देते हैं। आप मुझे एक काग़ज़ पर लिख दें। मैं खुद मि. पैडले (कलक्टर) से पूछ लूँगा कि मुझे अपनी पत्नी से कौन-कौन सी बातें करने की इजाज़त है।"

नायब जेलर ने कहा—"जो कुछ भी हो आप यहाँ पर पोलीटिकल (राजनैतिक बातें नहीं) कर सकते।''

प्रोफ़ेसर जी—"मैंने जेल मैनुएल अच्छी तरह पढ़ा है उसमें ऐसी कोई पाबन्दी नहीं है कि राजनैतिक बातें नहीं की जा सकती।

नायब जेलर—"मैं जेल मैनुएल नहीं जानता पर इस प्रकार की बातें आप नहीं कर सकते।"

सचमुच जेल मैनुएल में ऐसी कोई रोक मुलाक़ात के नियमों में नहीं दे रखी

थी कि राजनैतिक बातें न की जावें, परन्तु कुछ दिन बाद सरकारी आर्डर आ गया और जेल मैनुएल में एक नयी स्लिप जोड़ दी गयी कि क़ैदियों के साथ राजनैतिक बातें मुलाक़ात के समय नहीं की जा सकतीं। इस झंझट में उस दिन हमारी मुलाक़ात के बीस मिनट भी बहुत जल्दी समाप्त हो गए।

दूसरे दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब मेरे वार्ड में आये और आते ही बोले—

"हैलो मिसेज़ शास्त्री ! आप अपने खाबिन्द से मिलने के दिन कह देना कि आपसे ऐसी बातें न किया करें, नहीं तो आपकी मुलाक़ात बन्द करवा दी जावेगी।

ऐसे भद्दे ढंग से यह बात कही गयी कि मुझे क्रोध आ गया मैंने पूछा—

"आपसे किसने कहा।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट बोले—"ज्वाला प्रसाद (नायब जेलर) ने।"

मैंने क्रोध से कहा—"नायब जेलर झूठ बोलता है।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट—"मैं हुज्जत नहीं चाहता।"

मैंने भी इस तरह क्रोध से कहा—"आप हुज्जत नहीं चाहते मत चाहिए, मुझे भी परवाह नहीं। बड़ी खुशी से मेरी मुलाक़ात बन्द करिए। हम तो सहेंगे ही, जो सख़्ती हद से ज़्यादा आप कर सकते हो करिए। आपको मालूम हैं मैं आपके जेल के किसी भी नियम को नहीं तोड़ती और फिर आप एक-तरफ़ा बात सुनकर इस तरह कहने लगे।"

शायद सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को ख्याल आया हो कि कहीं इसकी आवाज़ जनता में कुछ आन्दोलन पैदा न करे अथवा जेलर ने ही कुछ धीरे-से कहा। जाते हुए सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे पुन पूछा :—

"तो क्या बात हुई थी।"

मैंने संक्षेप में बता दिया। तब सुपरिण्टेण्डेण्ट केवल यह कहते हुए चले गए—"शान्ति का नाम क्यों लेना था ?"

इस घटना से पूर्व मुझे कभी नहीं बतलाया गया था, कि कौन-सी बातें मुलाक़ात के समय करनी चाहिए या जेल में किन-किन नियमों का पालन होना चाहिए केवल देखा-देखी हमें जो नियम मालूम होते रहे, उनका ही पालन करने की चेष्टा मैं करती थी।

8

जेल में क़ैदियों से बर्त्ताव

कहा जाता है कि हिन्दुस्तान की पुलिस दुनिया भर में सबसे अधिक बिगड़ी हुई है। दुनिया के दूसरे देशों में पुलिस जनता की सहायता और रक्षा के लिए होती है। हिन्दुस्तान में इसके विपरीत पुलिस का काम लोगों को सताना और तंग करना है। अशिक्षित गाँवों में पुलिस का नाम भी डरावना समझा जाता है। पुलिस के समान ही कदाचित् उससे भी बुरी हालत हिन्दुस्तान की जेलों की है। पहले तो जेल के क़ायदे क़ानून ही सख्त हैं, तिस पर भी उन्हें बेरहमी से काम में लाया जाता है। पर साथ ही मेरा यह अनुभव है कि जेल की सख़्त आज्ञाओं और नियमों के होते हुए भी जहाँ अच्छा बुरा व्यवहार होना, किसी भी अच्छे या बुरे स्वभाव वाले अधिकारी पर निर्भर है। वहाँ जैसे चाहें वैसे व्यवहार करवाने का भार क़ैदियों पर सारा नहीं तो कुछ-न-कुछ ज़रूर है। यों तो जान-बूझ कर अच्छे स्वभाव वाले आदमी जेल के अधिकारी ही नहीं बनाये जाते और यदि बनते भी हैं तो दूसरे लोगों से मिलकर वह भी बिगड़ जाते हैं। कठिनता से कोई ऐसा सुपरिण्टेण्डेण्ट या जेलर होगा, जो किसी भी झगड़े की जाँच या मेहनत से ठीक-ठीक करे। क़ैदियों की शिकायत जैसी वार्डरों ने कर दी; सुपरिण्टेण्डेण्ट और जेलर ने वैसा सुन ही लिया। अगर सुपरिण्टेण्डेण्ट दूसरे क़ैदियों से गवाही भी माँगें, तो वही गवाही देंगे जो वार्डर उन्हें पहले से याद करा चुके हों। अगर क़ैदी ऐसा न करें तो वार्डर बैरक में जाकर उनकी बुरी गति करते हैं। बात-बात में तनहाई, बेड़ी आदि का उपहार दिलवाने लगते हैं। ज़िसके डर के मारे हर एक को वार्डरों को प्रसन्न रखने की चेष्टा करनी पड़ती है। वार्डर जितनी तनख़्वाह पाते हैं उससे कई गुनी अधिक कैदियों से प्राप्त करते हैं। किसी मुलाक़ात के समय जिसने वार्डर को चुपके से कुछ रुपये आदि दिला दिये, वह तो ठीक, नहीं तो मारपीट, तनहाई आदि सज़ा से बदला लिया जाता है।

मुझे याद है कि मेरे छूटने से कुछ दिन पूर्व एक मुसलमान लेडी वार्डर रखी

गयी थी। वह एक दिन हमारे वार्ड की एक 'सी' क्लास की स्त्री को मुलाक़ात कराने को ले गयी। उस स्त्री की एक छोटी लड़की और उसका एक चार वर्ष का लड़का अपनी माँ से मिलने आया था। माँ को देखते ही बच्चे चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगे। इधर माँ भी रो रही थी। देखने वालों का दिल फटा जा रहा था, पर वह हृदयहीन लेडी वार्डर माँ और बच्चों के बीच खड़ी हो गयी। उसने कहा—"मुझे कुछ दिलवाओ।'' लड़की ने कहा—"मेरे पास केवल चार आने हैं, यहाँ से अपने गाँव तक जाना होगा, अगर तुम्हें दे दूँ तो इक्के वाले को क्या दूँगी।'' परन्तु लेडी वार्डर ने एक ही रट लगा रखी थी. "नहीं, तुम्हें देने ही होंगे, चली थी मिलायी करने और पल्ले दाम तक नहीं; ऐसे थोड़े ही मिलायी होती है।" क़ैदी स्त्री ने हाथ जोड़ कर कहा—"वक़्त जा रहा है दो बात कर लेने दो।'' पर वार्डर को तो दाम चाहिए थे। लड़की ने चार पैसे निकाल कर सामने रख दिये, पर वार्डर न हटी, "क्या चार पैसे के लिए मैं तुम्हें यहाँ तक लाई हूँ?'' क़ैदिन माँ ने रोते हुए अपनी लड़की से कहा—"दे डाल बेटी, रास्ते में भीख माँगती हुई चली जाना नहीं तो आज के बाद तीन महीने तक मिलायी न हो सकेगी।'' लड़की ने आँचल से दाम खोल कर लेडी वार्डर की ओर बढ़ा दिये। वार्डर ने धीरे-से जूता उतार कर कहा, "इसमें डाल दो, होशियारी से, कोई देख न ले।" पैसे डलवा कर माँ और भी ज़्यादा रोने लगी—"हाय, आज मेरे बच्चों को भूखे-प्यासे तो लौटना होगा ही, पर मेरे जीते भीख भी माँगनी पड़ेगी।"

कितना करुण दृश्य था, साधारण मनुष्य तो माँ और बच्चों के इस मिलन को देख कर पिघल जाये, पर जेल के कर्मचारियों के जिस्म में विधाता ने वह चीज़ डाली ही नहीं जिसे दिल कहते हैं।

साधारणतया जेल के अधिकारियों का स्वभाव क्रूर और कठोर होता है। जब कोई क़ैदी अपनी अधिकार रक्षा के लिए या अपने ऊपर होते हुए अन्यायपूर्ण अत्याचार के विरुद्ध कुछ कहने का यत्न करता है, तब तो इस क्रूरता का नंगा रूप प्रकट हो जाता है।

सबसे बड़ी कठिनता का सामना बेचारे उन अशिक्षित क़ैदियों को इसलिए करना पड़ता है कि उन्हें जेल के नियम पता नहीं होते। जेल में रहने वाले क़ैदी और विचाराधीन अभियुक्त, दोनों के ही लिए जेल के नियम होते हैं। परेड कैसे करना चाहिए, अपनी आवश्यकताओं को अफ़सर तक कैसे पहुँचाना चाहिए, किस ढंग से रहना बैठना और चलना-फिरना चाहिए आदि इन नियमों को आने वाले नये क़ैदी

को बता देना कितना आवश्यक है। अफ़सर लोग कभी यह पूछने व जानने की चेष्टा नहीं करते कि अपराधी के अपराध करने का कारण क्या है? मैंने देखा—बेक़ायदा रहने और काम करने के कारण रोज़ ही बीस-बीस और पचीस-पचीस क़ैदियों को सुपरिण्टेण्डेण्ट हथकड़ी, बेड़ी, तनहाई का दंड देते थे। सज़ा देते समय बेचारे क़ैदी से कुछ पूछना आवश्यक न समझा जाता था। उन दिनों प्रायः यह शिकायत सबसे ज़्यादा रहती थी कि क़ैदी नियम तोड़ते हैं पर कभी किसी ने यह भी सोचा कि उन्हें नियम बताये किसने थे। उदाहरणार्थ,—क़ैदी को चाहिए कि अपनी ज़रूरत परेड के दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट के सामने कहे और वह भी पहले हाथ उठा दे—जब कोई उससे पूछे—क्या चाहते हो? तब वह अपनी जरूरत को कहे। पर ऐसा नियम शिक्षित क़ैदी तो एक-दूसरे को देख कर भी समझ जाते हैं। पर 'सी' क्लास में अधिकतर गाँव के अशिक्षित थे, जब तक उन्हें बताया या समझाया न जावे, वे कैसे जानें? वे लोग साहब के आने पर बिना हाथ उठाये—या बिना पूछे बोलने लगते थे—तिस पर साहब कहते थे—बेतरीक़े क्यों बोला? नाम नोट करो। हमारे सामने पेश करना। बेचारा क़ैदी मन-ही-मन जला करते, पर बेचारे क्या कर सकते थे।

जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल रहमान को किसी बात की चिन्ता थी तो अपना रोब ज़माने की। बड़ी शान से वह क़ैदियों के वार्ड में आते थे। साहब के वार्ड में आने की सूचना उनका कुत्ता दिया करता था, जिसे वह सदा साथ रखते थे, हालाँकि जेल में कुत्ता लाना जेल के नियम के विरुद्ध है। उसके बाद जेलर, डॉक्टर और एक सी. आई. डी. के मनुष्य के साथ सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब वार्ड में प्रवेश करते थे; उनके ठीक पीछे चँवर हाथ में लिए और सुपरिण्टेण्डेण्ट के पीठ पर बैठने वाली मक्खियों को उड़ाते हुए एक नम्बरदार होता था, जिसके पीछे दो पुलिस के सिपाही और वार्डर होता था। हमारे वार्ड में आते हुए उन्हें शायद अपनी जान पर इतना भय नहीं था, इसलिए दोनों सिपाही वार्ड के द्वार पर ही रह जाते थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब हिन्दुस्तानी होते हुए भी लोगों से अँगरेज़ी में सिर्फ़ इसलिए बोलते थे कि जिससे हमें ख्याल हो जावे कि आप हिन्दुस्तानी बोली नहीं जानते। मैंने कई बार कहा—मेरे साथ हिन्दुस्तानी में बात किया करें पर उन्हें बड़ी कठिनता मालूम पड़ती थी। बेचारे जेलर से अंग्रेजी शब्दों के अर्थ पूछा करते थे। यदि कोई अंग्रेज़ सुपरिण्टेण्डेण्ट होता, तो दूसरी बात थी। पर यहाँ तो एक हिन्दुस्तानी महाशय थे जिन्हें अपनी बोली बोलने में मुश्किल होती थी। शायद कोई अंग्रेज़ टूट-फूटी हिन्दुस्तानी बोल लेता पर हमारे

देशी साहब को बिना जेलर की सहायता के हिन्दुस्तानी बोलने में शर्म आती थी। यह है, हमारे भाग्य की विडम्बना ! यह है हमारी गुलामी का, हमारी मानसिक दासता का लज्जापूर्ण चित्र ! जब मेरे साथ ही साहब को हिन्दुस्तानी बोलने में इतना संकोच होता था तो बेचारे 'सी' क्लास के अंग्रेज़ी का अक्षर न जानने वालों के साथ क्या बात करते होंगे? हाँ, बात-बात पर डाँट देना, बुरी तरह बात करना उनका विशेष स्वभाव प्रतीत होता था। उन्होंने कभी मेरा ही लिहाज़ न किया, तब वह किसी पुरुष का क्या लिहाज़ करते।

जब तक जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल अब्दुल रहमान रहे मुझे एक ख़ास शिकायत उनके समय में रही; वह न स्वयं कभी नियम बनाते और न दूसरों का ही ख्याल करते थे। उन्होंने अपने समय में महिला वार्ड में निरीक्षण के लिए आने का दिन या समय कभी भी निश्चित नहीं किया, वह करते भी क्यों ? वह तो अपने को जेल का परमेश्वर समझते थे। कभी-कभी तो जब मैं नहा रही होती थी तभी दरवाज़ा खटकने लगता था; वार्डर चिल्लाती थी, साहेब बहादुर आते हैं ! इधर मैं चिल्लाती थी, जमादारिन ठहर जाओ ! द्वार खुल जाता था और मुझे जल्दी से बिना नहाए ही कपड़े पहन कर सामने आना पड़ता था। कई बार चाहा कि रहमान साहब कम से कम आने से आधा घण्टा पहले सूचना ही भिजवा दिया करें पर ऐसा कभी न हो सका। मुझे इस विषय में निःसंकोच कहना पड़ेगा कि उनके बाद जब एक यूरोपीय व्यक्ति मेजर क्लाइड सुपरिण्टेण्डेण्ट बन कर आये, तो हमारी यह तकलीफ़ सदा के लिए दूर हो गई। परन्तु रहमान साहब जब कभी भी भीतर आये, उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि मैं एक सभ्य स्त्री के सामने बात कर रहा हूँ, जो साधारण क़ैदी नहीं प्रत्युत राजनैतिक क़ैदी है।

मुझे यह कहते हुए कुछ लज्जा आती है कि जहाँ एक ओर एक हिन्दुस्तानी सुपरिण्टेण्डेण्ट का यह वर्त्ताव था, वहाँ दूसरी ओर यूरोपियन सुपरिण्टेण्डेण्ट ने एक भद्र महिला के प्रति जो मान मर्यादा दिखानी चाहिए उसका सदैव ध्यान रखा। मेरे रहते हुए जेल में दो यूरोपियन सुपरिण्टेण्डेण्ट आए एक मेजर यूल (एक फ़ौजी अंगरेज़) जो सात दिन तक कर्नल रहमान के छुट्टी पर उनके स्थान में आये और दूसरे मेजर क्लाइड जो स्थायी रूप से कर्नल रहमान की बदली होने पर उसकी जगह आये। दोनों ही का व्यवहार मेरे प्रति कितना शिष्टता और सभ्यता से पूर्ण था। उसमें और एक हिन्दुस्तानी सुपरिण्टेण्डेण्ट के व्यवहार में कितना अन्तर था। जब कभी मैं इस

पर विचार करती तो मेरा मन क्षुब्ध हो उठता, मैं सोचती कि हमारे भाई इस प्रकार के शासक हुआ करेंगे। बहुधा मैंने सुना था कि हिन्दुस्तानी अफ़सर और अँगरेज़ अफ़सरों के चरित्र में बड़ा फ़र्क़ होता है, पर यहाँ तो बात स्वयं मेरे ऊपर आ पड़ी और मैंने देखा कि हमारे भाइयों का कितना पतन हो चुका है, इस पर विचार करते-करते मुझे ख्याल आया कि यह सब गुलामी की नियामते हैं। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि सबसे बड़ा अनर्थ जो विदेशी राज्य से हुआ है वह आर्थिक पतन नहीं, बल्कि हमारा मानसिक और नैतिक पतन है। एक यूरोपियन अफ़सर चाहे दुश्मनी का भाव ही रखे पर वह आज़ादी की कीमत जानता है। चाहे वह ऊपर से अपने भाव को कितना ही छिपा ले पर अपने हृदय की तह में आज़ादी के सिपाहियों की इज्ज़त किये बिना नहीं रह सकता, पर एक हिन्दुस्तानी सरकारी नौकर की हालत दूसरी है। उसे पता नहीं कि आज़ादी क्या वस्तु है ! उसका दिल और दिमाग़ जिस धातु से बना है उसका नाम है—गुलामी।

9

कीचड़ में कमल

साधारण नियमों में अपवाद होना ईश्वर की सृष्टि का एक निश्चित विधान है, अपवादों के विना शायद यह जगत् बहुत कठोर और असत्य बन जाता। काली अन्धेरी रात में एक प्रकाश की रेखा, बिजली चमक उठती है समुद्र की गन्दली अँन्धेरी सतह में चमकदार मोती बिखरे हुए हैं। कीचड़ में कमल खिलता है, और वीरान रेगिस्तान में हरियाली अंकुरित होती है। जेल जैसे नारकीय-स्थानों में भी भगवान की विभूति की झलक कभी-न-कभी मिलने जाती है। मैंने कहा है कि जेल के लोग कितने क्रूर और निर्दय होते हैं परन्तु वहाँ भी ऐसी पवित्रात्माएँ पहुँच ही जाती थीं जिनके चेहरों पर दया और सहानुभूति अंकित होती है। यों तो जेल में समय-समय पर एक-दो ऐसे कर्मचारी आते ही रहे जिनमें मनुष्यता थी और जिनका व्यवहार सदैव शिष्ट होता था परन्तु जिस व्यक्ति को देखकर मुझे असीम आश्चर्य और हर्ष हुआ वह था एक बूढ़ा वार्डर। मेरी कितनी इच्छा होती है कि मैं उसका नाम यहाँ अंकित कर दूँ परन्तु वैसा करना शायद उस ग़रीब के लिए हानिकारक होगा।

मैं एक दिन बड़ी घबराहट और निराशा से विकल हो रही थी। वह जब फ़ीमेल वार्ड की ओर आया तो बीतचीत में मैंने उससे कहा कि मुझे और तो कोई कष्ट नहीं पर यह चिन्ता अवश्य रहती है कि मैं यहाँ अकेली राजनैतिक क़ैदिन हूँ। इतना सुनते ही उसने कहा—

"बहन जी, इससे आपको ज़रा-सी भी चिन्ता न करनी चाहिए। यदि ज़रूरत पड़े तो मैं नौकरी को भी तिलांजलि दे डालूँगा।"

वह उन व्यक्तियों में से न था जो लम्बी-चौड़ी बातें कह डालते हैं। उसने जो कुछ कहा उसका एक-एक शब्द उसके हृदय से निकला था। उसके चेहरे से वह भाव टपकता था, जो धर्मात्मा और सत्यवादियों के चेहरों पर सदा झलकता रहता

है। कहना न होगा उसके बाद मुझे कभी किसी प्रकार की चिन्ता और घबराहट न रही। मैं आश्चर्य में पड़ी हुई सोचने लगी कि इस नरक में भी आततायियों से रक्षा करने के लिए रक्षक देवदूत विद्यमान हैं।

एक दिन तो उस वार्डर ने मुझे सचमुच आश्चर्य में डाल दिया। जेल में 'ए' और 'बी' श्रेणी के क़ैदियों के जो फलादि आते हैं वे बहुधा अधिक होने पर जेल के कर्मचारी, सिपाही वार्डर आदि को मिल जाते हैं। मेरे सामान पर तो लेडी वार्डर की ख़ास नज़र रहती थी और मैं भी प्रायः उसे दे दिया करती थी।

एक दिन मेरे घर से कुछ फल आदि आये थे; वह बूढ़ा वार्डर उन दिनों बीमार था। डॉक्टर ने उसे केवल दूध और फल खाने को कह रखा था, मैं जानती थी कि बाल बच्चेदार वार्डर बीस रुपये में अपने लिये दूध फल नहीं जुटा सकता। मैंने सोचा अगर कुछ दिनों के लिए दूध और फल वार्डर को दे दिया करूँ तो बेचारे को फ़ायदा हो। एक दिन कुछ फल वार्डर को देते हुए मैंने कहा—तुम रोज़ मेरा दूध ले लिया करो। मैं कितने आनन्द और आश्चर्य से उसका मुख ताकती हुई रह गयी, जब उसने निम्न शब्दों के साथ मेरी चीज़ें वापस कर दीं।

बहन जी ! मैंने कभी अपनी बड़ी बहन तक के घर का नहीं खाया आप तो मुझसे बहुत छोटी हैं। हिन्दू के लिए तो छोटी बहन के घर का खाना पाप लिखा है।

उस दिन से मेरी श्रद्धा उस वार्डर पर हो गयी, मुझे उस समय कितना आनन्द हुआ होगा, वह कोई मेरी अवस्था में पड़ा हुआ व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है।

10

जेल में मेरी बीमारी

सारे दिन जेल की चारदीवारी और रात को कमरे में बन्द रहने का असर मेरे स्वास्थ्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता था यदि कोई स्त्री जो आजकल की कठोर पर्दा प्रथा की शिकार होकर घर में लगातार बन्द रहती है इस प्रकार एक जगह बन्द कर दी जाती तो शायद उसके लिए यह कोई बड़ा अन्तर न होता, पर मैंने अपना सारा जीवन खुली हवा में बिताया था। कश्मीर के स्वच्छ वायु-मण्डल में घूमते हुए मैं इतनी बड़ी हुई थी। एक साथ ही तंग जगह में बन्द होने से जो मानसिक कष्ट होता, उसे तो मैं ज्यों-त्यों करके उच्च भावनाओं से दबाने की चेष्टा करती पर शरीर पर तो उसका असर पड़ना ही था। फल यह हुआ कि जेल में दो मास तक रहने के बाद मुझे हलका-सा ज्वर होना शुरू हो गया। प्रतिदिन शाम को 99 और कभी 100 डिग्री तक बुख़ार हो जाता। जब पन्द्रह, बीस दिन तक यही हालत रही तो मुझे और मुझसे बढ़कर मेरे घर के लोगों को इसकी चिन्ता होने लगी।

मुझे किसी लेडी डॉक्टर को दिखाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। मैंने कहा कि मैं अब तक 'मिसेज टण्डन' लेडी-डॉक्टर से अपना इलाज़ कराती रही हूँ, उन्हें ही बुला कर मुझे दिखा दिया जावे। उस समय कर्नल रहमान की जगह मेजर यूल एक सप्ताह के लिए काम करने आये हुए थे। उन्होंने मेरी प्रार्थना पर मिसेज़ टण्डन को बुलाना स्वीकार कर लिया; पर जब जेलर को यह पता लगा तो जेलर ने मेजर यूल से कहा कि मिसेज़ टण्डन को बुलाना कर्नल रहमान को कभी पसन्द न आयेगा। पता यह चला कि कर्नल रहमान और कैप्टन टण्डन में कुछ अनबन हो चुकी थी जिसके कारण जेल में मिसेज़ टण्डन को भी नहीं बुलाया जा सकता था, अन्त में मेजर यूल अपने साथ एक लेडी डाक्टर को जिसका नाम 'मिस जान' था लाये। उन्होंने अच्छी तरह मेरी परीक्षा करके मेरे लिए दवाई तजवीज़ कर दी। दवाई बनकर भी आ गए और जेल की व्यवस्था के अनुसार मैं उसे पीने लगी, पर वहाँ कोई यह

देखने वाला नहीं था कि दवाई मुझ पर क्या असर कर रही है—बुरा या भला—? वह तो एक बार बन कर आयी, फिर जेल के क़ायदे के अनुसार बोतल समाप्त करनी मेरे लिए आवश्यक थी, फल यह हुआ कि मेरी दशा कुछ सुधरी नहीं बल्कि बिगड़ती ही गयी।

यह बात अक्टूबर मास की है। उन्हीं दिनों में कर्नल रहमान के बदले जेल में एक यूरोपियन महाशय, 'मेजर क्लाइड' सुपरिण्टेण्डेण्ट बन कर आये। जैसा कि मैं पूर्व भी लिख चुकी हूँ, उन्होंने मेरे साथ बहुत सहानुभूति का व्यवहार किया, और शास्त्री जी के आग्रह करने पर यह भी स्वीकार कर लिया कि मेरी शारीरिक परीक्षा मेरठ के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. भूपालसिंह जी के द्वारा करायी जावे। तदनुसार डाक्टर भूपालसिंह जी ने जेल में आकर मुझे देखा, उनके देखने से सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि कम-से-कम मुझे और मेरे सब सम्बन्धियों को सन्तोष हो गया।

इन्हीं दिनों में यह व्यवस्था कर दी गयी कि मैं प्रति सप्ताह एक बार मेरठ शहर के ज़नाने अस्पताल में चिकित्सा के लिए भेजी जाया करूँ। मुझे याद है कि जिस दिन मैं पहली बार जेल की चारदिवारी से निकल कर मेरठ शहर में होती हुई ज़नाने अस्पताल में लायी गयी तो उस समय मेरे हृदय में एक साथ ही न जाने कितने अपूर्व भाव उठ रहे थे। मैं एक लारी में तेज़ी के साथ शहर से निकाल कर अस्पताल पहुँचा दी गयी। लारी में चार सिपाही तैनात रहते थे—शायद मैं भाग न जाऊँ। फलतः जेल का सारा वायुमण्डल मेरे चारों ओर था परन्तु फिर भी एक बार खुली हवा में आने से केवल मेरठ की सड़कों पर दृष्टि डालने की समता प्राप्त होने से मेरे हृदय को जो अनिर्वचनीय आह्लाद हुआ उसे मैं किन शब्दों में लिख सकती हूँ ! मैं सोचने लगी कि पराधीनता और बन्धन के बाद थोड़ी सी नाम-मात्र की स्वाधीनता भी कितनी मधुर है। फिर सचमुच वह दिन भारत के इतिहास में कितना उज्ज्वल होगा जिस दिन सदियों की गुलामी के बाद भारत के वायुमण्डल में स्वाधीनता का प्रथम-प्रभात चमकेगा।

मैं अपने विषय से दूर चली गयी; सचमुच उस समय तो एक प्रकार से मैंने अपनी बीमारी को धन्यवाद दिया। लारी में जल्दी से निकलते हुए कई भाइयों की दृष्टि मुझ पर पड़ती थी पर वे लोग संभ्रम में पड़ जाते। कई भाई मुझे नमस्कार करते परन्तु पूर्व इसके कि मैं उसका उत्तर दूँ लारी आगे निकल जाती। लगभग आधा घण्टे अस्पताल में रह कर फिर मैं जेल में वापिस चली जाती। साधारणतया

मेरे अस्पताल जाने का दिन बुधवार था, परन्तु पीछे शायद इस दृष्टि से कि निश्चित दिन होने से मेरे सम्बन्धी मुझे अस्पताल मिलने न पहुँच सकें, दिन अनिश्चित रहने लगा और किसी समय अकस्मात् बिना पूर्व सूचना के मुझे अस्पताल जाने के लिए बुलावा आ जाता था। जो कुछ भी हो, प्रति सप्ताह एक बार अस्पताल जाने से मुझे कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य प्रतीत हुआ, पर यह नहीं कह सकती कि वह लाभ ज़नाना अस्पताल की दवाई से हुआ या चार मास के बन्दी को खुली हवा के दो चार झोंकों के लगने से।

इस प्रसंग में यह अनुचित न होगा यदि मैं दो-चार शब्द जेल की चिकित्सा और जेल के अस्पताल के विषय में इस परिच्छेद में लिखूँ। यद्यपि मुझे आँखों से जेल के अस्पताल के कमरे देखने का कभी मौक़ा नहीं मिला, पर जेल के डाक्टर और कम्पौडर हमारे वार्ड में औषधि देने और हाल पूछने प्रायः रोज़ आते थे। जेल-नियम के अनुसार उन लोगों को रोज़ एक बार प्रत्येक वार्ड में जाना ज़रूर होता था। केवल बीस या पचीस दिन छोड़ कर (जिन दिनों जेल में मलेरिया फैला हुआ था) क़ैदियों की संख्या चाहे 1000 हो या 400, पर वही एक डॉक्टर और वही एक कम्पौन्डर काम करते थे। मलेरिया के दिनों में कभी-कभी एक आध कम्पौन्डर और भी आये पर 24 घंटे से ज़्यादा कोई ठहर न सका, जिसका कारण सुनने में यही आता था कि उनसे कहा गया कि पहले कुछ दिन अवैतनिक काम करो तो फिर देखा जायेगा, पर वस्तुतः अवैतनिक रूप में काम करने को कोई तैयार न होता था।

जेल की दवाइयाँ भी ख़ास पेटेण्ट थी, एक बोतल से भरा हुआ पानी न जाने कितनी बीमारियों का इलाज़ था। वहाँ दवाइयों के नम्बर मुकर्रर थे। अब ठीक तो याद नहीं रहा, पर शायद उस लाल पानी का नम्बर 40 था। मैंने देखा हमारे वार्ड में अगर किसी को सर दर्द है, पेट दर्द या और कोई साधारण दर्द आदि है तो वही लाल रंग का पानी हर एक को दिया जा रहा है। एक नाप के गिलास में वहाँ पानी भर के लाया जाता था। किसी ने कहा मुझे जुकाम है तो वही एक डोज़ पिला दी और किसी ने कहा पेट दर्द करता है तो उसी में से दूसरा डोज़ पेट दर्द के लिए भी औषधि हो गया, और वही सर दर्द के काम भी आ जाता था।

चिकित्सा की यह हालत होने के कारण जेल में कभी-कभी बड़ा अनर्थ भी हो जाता था। एक बार मैंने सुना कि एक बूढ़ा क़ैदी बीमार पड़ गया। अस्पताल

के कमरे में ही रात को उसकी हालत बहुत ख़राब हो गई। हाथ पाँव ठण्डे होते देख एक क़ैदी ने वार्डर से कहा, "कम्पौण्डर साहब या डाक्टर साहब को ख़बर कर दो।" ख़बर हो गई; पर वहाँ से जवाब मिला, "अगर ऐसी हालत है, तो मर गया होगा, देखकर एक अलग खाट पर डाल दो, मैं ही जाकर क्या कर लूँगा ? बेचारे बूढ़े क़ैदी को निमोनिया का बुख़ार एकदम दूर हो जाने से शिथिलता के मारे बेहोशी सी हो गई थी। बेचारा अलग खाट पर डाल दिया गया, जहाँ वह प्रातः आठ बजे तक पड़ा रहा पर किसी ने नहीं देखा कि वास्तव में मरा है या नहीं। ठीक 9 बजे सुपरिण्टेण्डेण्ट अस्पताल में दाख़िल हुए। उन्हें सूचना दी गयी कि एक क़ैदी रात को मर गया। परन्तु साहब ने जब कपड़ा हटाया तो क़ैदी की साँस चल रही थी। उसे उठा कर कमरे में लाया गया। रात की सर्दी से बेचारा बुड्ढा क़ैदी काँप रहा था और उसी कँपकँपी में उसके प्राण दुपहर के दो बजे शरीर से अलग हो गये।

जिस झाड़न से औषधियाँ ढँक कर लाई जाती थीं वह प्रायः मैला होता था, वह जेल में ही साधारणतया धो दिया जाता था। धोबी का घर तो उसने कभी देखा ही न था। ऐसी अवस्था में यदि क़ैदी जीते रहे तो अपने भाग्य से। इसीलिए यदि जेल में जाकर जिसे बदकिस्मती से एक आध बार भी ज्वर आया तो बस वह फिर सँभला तो अपने घर ही जाकर।

11

प्रतिष्ठित अभ्यागत महिलाएँ

साधारणतया जब 15वें दिन मेरी मुलाकात होती थी उस समय कभी मेरठ की और कभी बाहर की मेरी संबंधिनी स्त्रियाँ मुझसे मिलने आया करती थीं परन्तु दो बार ऐसा अवसर आया जब कि कुछ प्रतिष्ठित महिलाएँ जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट के द्वारा विशेष प्रबन्ध करके मुझसे जेल की बैरक में मिलने आयीं।

एक दिन कर्नल अब्दुल रहमान मेरी बैरक में आये और मुझसे कहने लगे कि कुछ औरतें आपको जेल में देखना चाहती हैं। किसी अँगरेज़ महिला से मिलने में आपको कोई आपत्ति तो न होगी या केवल आप हिन्दुस्तानी स्त्रियों से ही मिलती हैं? मुझे उनके प्रश्न पर कुछ आश्चर्य हुआ। किसी अँगरेज़ स्त्री से मिलने में मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी? मि. रहमान शायद यह समझते थे कि कांग्रेस वाले अँगरेज़ों को अपना दुश्मन समझते हैं, इसलिए शायद मुझे किसी अँगरेज़-स्त्री से मिलना भी पसन्द न होगा। उन्हें यह पता नहीं था कि हमें किसी व्यक्ति विशेष से द्वेष या घृणा नहीं है। यह तो महात्मा गाँधी के सिद्धांत से बहुत दूर है। ख़ैर, मैंने कर्नल रहमान को कहा—

"मुझे किसी अँगरेज़ महिला से मिलने पर क्या आपत्ति हो सकती है? वह तो एक स्त्री होने के नाते मेरी बहन के समान हैं।"

दूसरे दिन प्रातः काल ही मेरा वार्ड खुला। मैं बैठी हुई एक पुस्तक पढ़ रही थी कि इतने में मैंने देखा कि एक यूरोपियन स्त्री और एक भारतीय महिला कर्नल रहमान के साथ-साथ अन्दर आ रही हैं। मैं अपनी बैरक से बाहर आई। कर्नल रहमान ने परिचय देते हुए कहा कि –

"यह मिसेज़ रहमान हैं। और दूसरी यूरोपियन महिला मेरठ के किसी अँगरेज़ इंजीनियर की स्त्री हैं। मिसेज़ रहमान ने मेरे साथ हाथ मिलाते ही पहला प्रश्न यह किया, "क्या आप अँगरेज़ी जानती हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "हाँ कुछ।"

इतना सुनते ही मिसेज़ रहमान के चेहरे पर एक प्रसन्नता का भाव अंकित हो गया। मानो अँगरेज़ी जानना बड़े गौरव की बात है। उस समय मेरे मन में एक ग्लानि का भाव उत्पन्न हुआ कि गुलाम देश में अँगरेज़ी जानना भी एक महत्त्व की बात समझी जाती है।

ख़ैर, मैं उन्हें अपनी बैरक के भीतर ले गयी। पर वहाँ मेरे पास सिवाय खाट के और बैठाने को था ही क्या? मैंने उनसे कहा कि आजकल मेरा घर और सब कुछ यही है। बैरक में मेरा बिस्तर लोहे की खाट पर बिछा हुआ था। पास ही एक मिट्टी के चबूतरे पर मेरा बक्स रखा था और उसी के पास ही एक छोटा-सा बेंत का बक्स था, जिसमें मैं खाने का सामान रखती थी। बस यही मेरी गृहस्थी थी। पास के दूसरे चबूतरों पर 'सी क्लास' की स्त्रियों के कम्बल और चटाइयाँ पड़ी हुई थीं। अन्दर घुसते ही मिसेज़ रहमान यह कहकर बाहर निकल आयी– "Oh, this is very dirty."

(यह बहुत गंदा है)

ठीक ही कहा था, जिन लोगों की घुड़सालें भी उस बैरक से अच्छी हों, वे उसमें ठहरना क्यों पसन्द करतीं ? फिर वे तो सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल की स्त्री की हैसियत से वहाँ पर गई थीं।

मैंने उनसे कहा कि मेरे पास तो सिवाय इसके और कोई बिठाने की चीज़ नहीं है, इस पर जेलर ने एक जमादार को इशारा किया। बाहर से एक कुर्सी और बेंच आ गयी। इसके बाद मिसेज़ रहमान ने मुझसे पूछा कि :–

"आप जेल में कब से हैं ?"

मैंने बताया–"18 जुलाई से।"

उन्होंने पूछा–"आप मेरठ में क्या थीं ?"

उनका प्रश्न विचित्र-सा था। मैं समझ न सकी मैंने उनसे पूछा कि आपका क्या मतलब है? फिर मिसेज़ रहमान ने कहा कि–

"क्या आप लीडर थीं ?"

मैंने उत्तर में कहा कि मैं कांग्रेस का काम करने वाली बहुत-सी बहनों में एक हूँ। मैं अपने भाइयों को विदेशी कपड़े छोड़ने और नशीली वस्तुओं का परहेज़ करने के लिए कहती थी। उसी अपराध से मैं जेल में डाली गई हूँ। इतने में उनकी दृष्टि

मेरी साड़ी पर पड़ी। उसे दिखाकर वे उस यूरोपियन महिला से कहने लगीं—"This is Khaddar." ('दिस इज़ खद्दर।')

मैंने उनसे कहा कि आप खद्दर क्यों नहीं पहनतीं? मिसेज़ रहमान ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया फिर वे मुझसे पूछने लगीं कि आप मेरठ में किस जगह रहती थीं? मैंने इसका साधारण उत्तर देकर फिर उनसे कहा कि--

"आप भी हिन्दुस्तानी हैं। आप कांग्रेस के काम में भाग क्यों नहीं लेतीं?"

मिसेज़ रहमान ने उत्तर दिया—"मैं कैसे ले सकती हूँ ? मेरे पति तो सरकारी नौकर हैं।"

मैंने फिर कहा—"इससे क्या। इसी मेरठ में कई ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिनके पति सरकारी नौकर हैं पर वे हमारी मदद करती हैं। मुल्क को मदद पहुँचाने के बहुत से तरीक़े हो सकते हैं।"

शायद मिसेज़ रहमान को मेरी यह बात पसन्द न आयी और वे अधिक देर मेरे पास न रुकीं। अगले दिन डाक्टर साहब जो मुझे दवा देने आते थे, मुझसे पूछने लगे कि आपने मिसेज़ रहमान से क्या कहा था? मैंने कहा कि आप क्यों पूछते हैं, तो वे कहने लगे कि कर्नल रहमान कह रहे थे कि आपने उनसे खद्दर पहनने और कांग्रेस की मदद करने को कहा था। मैंने उत्तर दिया, "बेशक मैंने कहा था, इसमें हर्ज ही क्या है।"

जिस मुलाक़ात का वर्णन मैंने ऊपर किया है, वह एक ढंग की थी। और ठीक उससे दूसरे ढंग की मुलाक़ात वह थी जो एक आइरिश यूरोपियन महिला ने उसके कुछ दिन बाद मेरे साथ की। ऊपर की मुलाक़ात में मेरी एक हिन्दुस्तानी बहन थी, पर वह सहानुभूति के कारण मिलने नहीं आयी थी, उसे मेरे सुख-दुःख से मतलब न था, उसके लिए तो एक राजनैतिक महिला को क़ैदी के रूप में देखना एक तमाशे की चीज़ थी। परन्तु जो आइरिश महिला मुझसे मिलने आयी, उसके हृदय में सहानुभूति और प्रेम था, वह जेल की क़ैदिन का तमाशा देखने नहीं आयी थी, बल्कि वह ऊर्मिला से मिलने आयी थी।

उन दिनों मुझे ज्वर रहा करता था। उस भद्र महिला के आने की सूचना मुझे पहले से न दी गयी थी। मैं अपने बिस्तर पर लेटी हुई थी। एक साथ द्वार खटका। मैंने देखा कि सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ यूरोपियन महिला आ रही हैं। मैं उन्हें देखकर आनन्द से उछल पड़ी। वे मेरी पूर्व परिचित, मेरठ कॉलेज के प्रिंसिपल की पत्नी

श्रीमती ओडानल थीं। उन्होंने बड़े प्रेम से मेरे पास आकर हाथ मिलाया। मेरे सामने फिर वही चिन्ता उपस्थित हुई कि उन्हें कहाँ बिठाऊँ? पर वे शीघ्र ही मेरी कठिनता समझ गयीं और कहने लगीं कि यह कोई तुम्हारा घर तो नहीं है, तुम संकोच क्यों करती हो ?

फिर हम दोनों उसी बिस्तर पर साथ-साथ बैठ गये। कितने प्रेम से उन्होंने मेरे साथ बातें कीं? मेरे स्वास्थ्य का, रहन-सहन का समाचार पूछती रहीं। उनके प्रेम और सहानुभूति के कारण मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो मेरी सारी बीमारी भागी जा रही हो। बैरक में मच्छर बहुत थे, और वे लगातार हम दोनों पर आक्रमण कर रहे थे, पर वे उसे सहती रहीं। फिर मुझसे पूछने लगीं—

"यहाँ मच्छर तो बहुत हैं?"

मैंने कहा—"यह तो आप देख ही रही हैं। मच्छरों की वजह से मेरे हाथ पक गये हैं और ज्वर आता है।"

उन्होंने पूछा—"इसका सबब क्या है।"

मैंने कहा— यहाँ आठवें दिन लिपाई होती है जो मिट्टी लाई जाती है वह बहुत गन्दी और बदबूदार होती है, शायद वह पास के गन्दे नाले से लाई जाती है। वस्तुतः मच्छरों का कारण वह मिट्टी ही थी। जब वह सूखी होती थी तभी उस पर मच्छर और मक्खियाँ उड़ने लगती थी। एक-एक इंच लम्बे कीड़े उस मिट्टी के अन्दर रहते थे। वह मिट्टी गोबर डाल कर लिपाई के काम में लाई जाती थी। जब मुझे ज्वर आने लगा तो मैंने कई बार प्रार्थना की कि उस मिट्टी से लिपाई न की जावे। परन्तु मेरी प्रार्थना व्यर्थ हो गयी। मैंने घर से मच्छरदानी भी मँगाई, पर वह खद्दर की थी, इसलिए हवा बन्द होने के कारण मैं उससे कोई लाभ न उठा सकी। मेरा यह ख्याल है कि जेल में जाने वाले क़ैदियों को एक विशेष कष्ट मच्छरों का रहता है। मच्छर, क़ैदियों को जेल से डरा कर सरकार की बड़ी सेवा करते हैं।

मैं ऊपर श्रीमती ओडानल का जिक्र कर रही थी। बहुत देर तक मैं उनके साथ बातें करती रही। उनके चले जाने पर मुझे कुछ क्षोभ-सा हुआ। उनकी इस प्रेमपूर्ण मुलाक़ात की स्मृति मेरे हृदय-पट पर चिरकाल तक अंकित रहेगी।

12

एकान्त-जीवन का अन्त

यद्यपि दो-तीन क़ैदी स्त्रियाँ मेरे जेल के आने के दिन से सदा ही फ़ीमेल वार्ड में बनी रहीं, पर उनका होना या न होना मेरे लिए बराबर था। वे उस श्रेणी से आयी थीं कि जिनके साथ मेरा कोई सहचार नहीं हो सकता था। मेरा ख्याल है कि यदि मैं ग्रामीण अपढ़ स्त्रियों के बीच में रख दी जाती, तो मैं उनमें भी मिल जाती और उनके साथ भी मुझे कुछ-न-कुछ संगति का स्वाद प्राप्त हो जाता। पर वे स्त्रियाँ जिनके साथ मुझे जेल में रहना पड़ा उस दर्जे की थीं जैसी कि हमें बाहर कभी ही देखने को मिलती होंगी। खून और चोरी व इसी तरह के दूसरे अपराधों में वे पकड़ कर आयी थीं। उनसे मुझे इतनी घृणा नहीं थी जितना कि डर लगता था उनकी संगति की अपेक्षा यही अच्छा था कि मैं एकान्त जीवन व्यतीत करूँ। जेल में आने के दिन से लगातार पौने तीन महीने तक मेरा जेल-जीवन तनहाई का जीवन था। साधारणतया क़ैदियों को कोई बड़ा अपराध करने पर तनहाई की सज़ा मिलती है पर मुझे तो लगातार तनहाई मिली हुई थी। मेरी हालत किसी अंश में राबिन्सन क्रूसो के समान हो रही थी और कभी-कभी उसी के शब्दों में सोचा करती थी कि "इस अपनी जेल-कोठरी में मेरा अखण्ड राज्य है।"

एक आशा थी जो मुझे जिला रही थी और जो मेरी सान्त्वना थी—मेरी बाहर की बहनें आज नहीं तो कल आ ही जायेंगी। पर जेल में एक सप्ताह नहीं, एक महीने और दो महीने बीत गए, पर मैं अपनी कोठरी में अकेली ही रही। यह बात नहीं थी कि मेरे पीछे मेरी बहनों ने काम ढीला कर दिया हो, काम पूरे ज़ोर पर था पर सरकार ने इरादा ही बदल दिया मेरे पकड़ने पर जो कुछ परिणाम निकला उसको देखते हुए बुद्धिमत्ता भी यही थी कि आगे किसी को न छेड़ा जावे, नहीं तो मेरे पकड़ने के अगले दिन ही मेरे साथ काम करने वाली बहनों ने जो कुछ किया था, वह मेरठ-जेल की सारी फ़ीमेल वार्ड को भरने के लिए काफ़ी था। पर सरकार

मौन साध गई। मैं जिस दिन पकड़ी गई थी उससे पहले दिन ही मैंने अपने भाषण में कहा था कि "जेल न सिडीशन से मिलती है न शराब के पिकेटिंग से, और न कपड़े के बायकाट कराने से वह तो केवल भाग्य से मिलती है।" मैं स्वयं जेल आने के दिन से तीन महीने पूर्व से लगातार वही काम कर रही थी। न जाने कितने व्याख्यान दिये और कितने दिन पिकेटिंग में लगाये, पर कभी कुछ न हुआ। पर जब शुभ मुहूर्त आया तो मुझे इस बात पर पकड़ लिया गया कि मैंने कालेज के विद्यार्थियों से कहा था कि तुम वालण्टियर बनो। और सचमुच जब मजिस्ट्रेट ने मुझसे पूछा कि "क्या तुमने विद्यार्थियों को पिकेटिंग करने के लिये कहा था' तो मुझे हँसी आयी, मैंने मजिस्ट्रेट को कहा कि मैंने तो इससे बहुत अधिक कहा था। ऐसी हालत में किसी का पकड़ा जाना केवल सरकार की नीति पर निर्भर था। पर जो पकड़े जाते थे वे यह सोच कर सन्तोष कर लेते थे कि हमारी कीमत सरकार ने लगा दी है। ख़ैर, ऐसी हालत में यदि दूसरी बहन बहुत दिन जेल में नहीं आयी तो इसे या तो मेरी बदनसीबी कहना चाहिए या उनकी ही।

अन्ततः 12 अक्टूबर को मेरे एकान्त जीवन का अन्त हो गया। मेरे जेल वाले घर में मेरी राजनैतिक कार्यक्षेत्र सहयोगिनी तीन बहनें मेहमान बनकर आ गयीं। इनमें से दो बहनें तो बायकाट में मेरी सहयोगिनी श्रीमती प्रकाशवती और श्रीमती विद्यादेवी जी थीं, और तीसरी बहन मेरठ के महिला चरखा संघ की मन्त्रिनी श्रीमती कमला देवी चौधरानी थी। मुझे उस दिन कितना हर्ष हुआ होगा इसका अनुमान करना पाठकों के लिए कठिन होगा। वृक्ष की शीतल छाया का स्वाद वही जानता है, जो कड़कती हुई धूप में दूर से चलकर आया हो। आग की गरमी का आनन्द उसे ही मिलता है जो पूस की सर्दी में नंगा पड़ा हुआ अकड़ गया हो। उन बहनों का आना मेरे लिए क्या था? मानो चिर-कंगाल को इकट्ठी धनराशि मिल गई हो, बहुत दिनों के भूखे को भोजन की थाली परस दी गयी हो। वह दिन मेरे लिए एक विशेष उत्सव का दिन था। यहाँ तक कि जेल के कई लोगों ने मुझे बधाई भेजी कि आज से आपकी तनहाई समाप्त होती है।

जेल के अधिकारी ही क्या जो ऐसे मौक़े पर अपनी भलमनसाहत का स्वांग न दिखायें। न जाने किस मतलब से जेलर वहाँ पहुँचे और कहने लगे–

''नयी आई हुई स्त्रियों की अभी कोई क्लास तो नहीं हुई है इसलिए क़ायदे के मुताबिक उनके साथ सी क्लास का सलूक होना चाहिए, पर लिहाज़ के कारण

मैं उनके लिए भी कच्चा खाना भिजवाये देता हूँ जिससे इन्हें कोई तकलीफ़ न हो।''

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि साधारणतया किसी क़ैदी की क्लास, सज़ा के समय बतलायी जाती थी। इसलिए मुक़दमे के फ़ैसले होने तक कोई क्लास न होती थी। पर पुलिस के लोगों ने यह समझकर कि यदि स्त्रियों के साथ बुरा सलूक हुआ तो बारूद में चिनगारी लग जायेगी—जनता भड़क उठेगी, जेल में आनेवाली स्त्रियों की वारण्ट के साथ ही फ़ैसला होने तक के लिए 'ए क्लास' निश्चित कर दी थी। शायद जेलर को इसका पता न था या जान-बूझकर वे इस बात को उड़ाना चाहते थे। विद्यावती जी ने कहा कि—

हमारी क्लास निश्चित हो चुकी है। कृपा करके हमारे लिए खाटों का इन्तज़ाम कर दीजिए।

जेलर—मैं क्या इन्तज़ाम करूँ ?

विद्यावती जी—"मेरी खाट तो 'ए' क्लास के पुरुष-वार्ड में कहीं पड़ी होगी। क्योंकि जब मेरे पति जेल आये थे तो घर से खाट भिजवायी गयी थी। अब उनकी बदली हो गयी है वह ख़ाली होगी। और दूसरी बहनों के लिए घर से खाट मँगा लीजिए।''

जेलर, 'सी क्लास वालों को खाट नहीं मिलती', इतना कहता हुआ चला गया। परन्तु अन्ततः कुछ तंग करने के बाद खाटों का प्रबन्ध हो गया।

इसके बाद नयी आई हुई स्त्रियों का नियमपूर्वक मुलाहिजा करने के लिए सुपरिण्टेण्डेण्ट-जेल कर्नन रहमान ने फ़ीमेल वार्ड में प्रवेश किया। हमलोग रसोई में लगी हुई थीं। जमादारिन के आवाज़ देने पर बाहर निकल आयी। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सब से नाम-धाम आदि पूछने शुरू किये। विद्यावती जी और प्रकाशवती जी से पूछकर, कमला जी से भी वही प्रश्न दुहराये—

सुप.—आपके पति का नाम?

कमला जी—डॉक्टर चौधरी।

सुप.—क्या आप बंगाली हैं?

कमला जी—नहीं ! हमलोग लखनऊ के रहने वाले हैं।

सुप.—चौधरी साहब ने डाक्टरी कहाँ से पास की?

कमला जी—कलकत्ते से।

सुप.—अगर आप बंगाली नहीं हैं तो कलकत्ते से क्यों की? लखनऊ से क्यों

नहीं की?

कमला जी—यह तो आप उनसे ही पूछिए।

अन्तिम उत्तर से सुपरिण्टेण्डेण्ट की त्यौरियाँ चढ़ गयी। "उनसे ही पूछिए" इन शब्दों में जेल के नवाब साहब को कुछ अपमान की गन्ध आने लगी। वहाँ से तो चले गये, परन्तु उनका क्रोध भड़क उठा। इसका बदला लिये बिना कैसे रह सकते थे ? श्रीमती कमला देवी की मुलाक़ात बन्द कर दी गयी। तीन-चार दिन बाद बड़ी मुश्किल से इज़ाजत मिली। इस पर कोई टीका टिप्पणी व्यर्थ है। एक जेल में आयी हुई स्त्री के सीधे-सादे यथोचित उत्तर में अपनी मानसिक कमज़ोरी के कारण अपमान की गन्ध आ जाने से या आदर की कमी का अनुभव करने के कारण नाराज़ होकर एक आश्रित स्त्री के प्रति बदला लेने की इच्छा को मनुष्य मनोभावों की किस गिनती में रखा जाये, इसका उत्तर शायद कोई मनोविज्ञान-शास्त्री ही दे सकेंगे।

12 अक्टूबर के बाद मेरा सूना जेल का घर आबाद हो गया। उसमें भी झण्डे का गान गूँजने लगा, उसमें भी चहल-पहल रहने लगी। केवल कभी-कभी मेरे हृदय में एक हलकी-सी वेदना होती थी, कि मैं अपने एकान्त-वास के एकमात्र साथी पेड़ और पक्षियों को भूली जा रही थी।

13

जेल का भोजन

जेल में यों तो तीनों तरह के क़ैदियों को वही भोजन मिलता है; पर 'ए' क्लास वाले अपने घर से भी मँगाकार भी खा सकते हैं। जेल मैनुएल में दिया गया है कि 'ए' क्लास के क़ैदी अपना भोजन घर से 'सप्लीमेण्ट' (पूरा) कर सकते हैं. 'सप्लीमेण्ट' का अर्थ लगाना जेल के अधिकारियों पर निर्भर होता है। कभी-कभी वे कहते हैं कि केवल फल लिये जा सकते हैं और कभी-कभी सभी अधिक चीज़ें भी ले ली जाती हैं। जब मैं जेल गयी ही थी, लगभग एक सप्ताह तक मुझे जेल में पका हुआ भोजन भेज दिया जाता था; अनुकूल न पड़ने के कारण उसके बाद मैंने स्वयं पकाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। तब मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे किस हिसाब से रोज़ खाना दिया जाता है।

मुझे कहा गया कि आपकी सादी क़ैद है, जेल में 'ए' क्लास की सादी क़ैदवाले को छः आना रोज़ के हिसाब से खाना दिया जाता है, और सख़्त क़ैदवाले को आठ आने के हिसाब से। मुझे दोनों समय पर इकट्ठा कच्चा सामान तोल कर दिया जाने लगा वह इस प्रकार था–

पाँच छटाँक दूध,
तीन तोले चावल–(बाद में इनकी मात्रा 5 तोले हो गयी)
एक छटाँक आलू–जो संख्या में अधिकतर एक होता था।
दो छटाँक दाल,
आधी छटाँक बूरा (मीठा)
सवा सेर लकड़ी,
छः छटाँक आटा,
चौथाई छटाँक नमक,
आधा छटाँक मिर्च-मसाला,

आधी तोला चाय।

आधी छटाँक घी और बाद में दो छटाँक सूजी भी मिलने लगी। पर यह समझ में नहीं आया कि यह क्यों दी जाती थी ? पूछने पर पता लगा कि ऊपर से आर्डर आया है इसी हिसाब से 'बी' क्लास में भी खाना जाया करता था। यदि कोई स्वास्थ्य ख़राब हो जाने की वजह से खाना बन्द कर दे तो डॉक्टर की आज्ञा से उसी हिसाब से खाने के बदले दूध या और चीज़ें मिलने लगती थीं।

सज़ा के अन्तिम दिन दो मासों में जब मेरा स्वास्थ्य ख़राब था, ऊपर के सामान के बदले निम्न चीज़ें मिलने लगीं—

तीन पाव दूध,

एक डबल रोटी,

आधा औंस मक्खन,

एक छटाँक आलू।

'सी' क्लास वालों का भोजन बहुत ज़्यादा बुरा होता था। उन्हें घी की जगह तेल मिलता था। रोटियाँ आधी जलीं, आधी कच्ची रहती थीं। आटे में रेत की तो कुछ हद ही नहीं होती थी। कभी-कभी हम लोग शाम को दो रोटी और सब्ज़ी 'सी' क्लास वालों की ले लिया करती थीं। उनके विषय में मैं तो केवल इतना ही कह सकती हूँ कि सिवाय खाने वाले के दूसरा कोई भी इसका अनुमान नहीं कर सकता। शाक में प्रायः तेल कच्चा डाल दिया जाता था। मिर्चें इतनी होती थीं कि खाया ही न जा सके; रोटी और सब्ज़ी दोनों में ही रेत होता था। यों तो जेल डॉक्टर की आज्ञा होती थी कि वह सब्ज़ी चढ़ने के समय अपनी आँखों से सब देखे, पर ऐसा कभी होता ही न था। डॉक्टर साहब ने कम्पौण्डर पर डाल दिया; सैकड़ों क़ैदी और बेचारा एक कम्पौण्डर; वह दवाई बाँटे या ख़ाना पकता देखे। फल यह होता था कि दोनों ही बातें रह जाती थीं; न रोगियों को ठीक औषधि ही मिलती और न खाना ही सफ़ाई से बनता था। हाँ, जब कोई अफ़सर जेल-निरीक्षण के लिए आता था तब ज़रूर डाक्टर साहब जाकर देख आते थे।

नियमानुसार जेल के बारा में जो सब्ज़ी पैदा हो, वह जेल के क़ैदियों को मिलनी चाहिए, पर जेल के क़ैदियों की विशेषकर 'सी' क्लास वालों की शिकायत थी कि बाग में पैदा हुई सब्ज़ी जेल के कर्मचारियों के भेंट हो जाती थी। मैं नहीं कह सकती कि यह बात कहाँ तक ठीक थी, पर कहा जाता था कि जब कभी 'सी' क्लास में

गोभी के फूल बनने को जाते तो रसोईघर तक पहुँचते-पहुँचते फूलों की जगह पत्ते ही रह जाते थे, और मोटे-मोटे डण्ठल गोभी के नाम से क़ैदियों के ख़ाने के लिए मिलते थे। कोई भी दाल बने, सभी का रंग काला होता था। रोटियाँ जली और कच्ची; दोनों ही बातें एक साथ होती थीं। इसका कारण शायद यह था कि सुबह से पका-पका कर रोटियाँ एक दूसरे के ऊपर दबाकर रख दी जाती थीं। वे पकी और जली होने पर भी गल जाती थीं। सब्ज़ी में कच्चे तेल डालने का कारण शायद यह था कि यदि आरम्भ में तेल डाला जावे तो—मिकदार के मुताबिक पूरा डालना पड़ता है और अगर सारा डालना पड़े तो कई लोगों की रोज़ की मालिश रह जावे और तेल से होने वाले दूसरे कार्य कैसे हो सकें ! इसलिए तेल अन्त में डाला जाता है, वह कच्चा तो रहता है, पर दीखता अधिक है। तीसरी बात रोटी में रेत होने की है उसका कारण तो और भी स्पष्ट है। प्रत्येक क़ैदी को तोल कर रोटी दी जाती है; प्रायः हिसाब से पाँच रोटियाँ प्रत्येक के हिस्से में पड़ती हैं। जो लोग साधारण काम करते है, उनकी बात जाने दो, पर जिन्हें सोलह-सोलह सेर आटा रोज़ पीसने को मिलता हो, उनका पेट इन हलकी-हलकी पाँच-पाँच रोटियों से कैसे भर सकता था, इसलिए वे लोग भूख की ज्वाला को शान्त करने के लिए पीसते समय कच्चा आटा खा लेते हैं। पर उन्हें पीस कर वापस देते समय पूरा आटा देना होता है। उनको पूरा करने के लिए वे रेत मिला देते हैं। फिर इसी नुस्खे को वार्डर और जेल के सिपाही भी काम में ला सकते हैं। जितना आटा लेना हुआ उतना ही रेत डालकर तौल पूरी कर दी, इस प्रकार जेल की रोटियाँ में रेत होने की आम शिकायत बनी रहती है। जेल की सब्ज़ी जिसे 'भुजिया' कहा जाता है अपने ढंग की अनूठी चीज़ होती है, उसका स्वाद चखने से ही ताल्लुक रखता है, वह लेखनी का विषय नहीं।

14

जेल में श्रेणी भेद

अमर शहीद प्रातः स्मरणीय श्री यतीन्द्रदास के अनुपम बलिदान का यह फल हुआ था कि एक बार पत्थर-हृदय भारत सरकार का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि जेल में सड़ने वाले राजनैतिक क़ैदियों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार न हो। बहुत सी जाँच-पड़ताल होने के बाद यह फ़ैसला हुआ कि साधारण क़ैदियों के अतिरिक्त अच्छी स्थिति रखने वाले राजनैतिक क़ैदियों को 'ए' और 'बी' क्लास में रखा जावे उपर्युक्त दोनों क्लासों में क़ैदियों को कुछ सुविधाएँ देने के लिए कुछ नियम भी बना दिये गये अब इतने दिन के अनुभव के पश्चात् कहा जा सकता है कि इसमें भी भेद वा कितना दुष्परिणाम हुआ है। और सरकारी कर्मचारियों ने इस प्रेमी भेद के द्वारा अपनी फूट डालने वाली नीति से अच्छी तरह काम लिया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं पिछले ही नहीं, सी क्लास सत्याग्रह संग्राम के दिनों में कि कई बार अत्यन्त प्रतिष्ठित लोगों को बी. क्लास कर दी गयी, दर्जनों इसके उदाहरण दिये जा सकते हैं। कई अफ़सरों ने समझा था कि इस प्रकार अनुचित श्रेणी भेद करने से सत्याग्रहियों के हृदयों में अवनय क्षोभ उत्पन्न होगा, इतना ही नहीं, जेल के अन्दर सी. क्लास के सत्याग्रहियों को बार-बार भड़काया जाता था कि तुम लोग सी. क्लास में सड़ रहे हो, तुम्हारे लीडर 'ए' और 'बी' क्लास में मौज उड़ाते हैं। कई बार अनेक जेलों में 'ए' और 'बी' क्लास के सत्याग्रहियों ने केवल इस दृष्टि से कि वे भी सी. क्लास वालों के कष्टों का अनुभव कर सकें, 'सी' क्लास में अपने को बदलवाने के लिए प्रार्थना पत्र दिये परन्तु इस प्रार्थना पत्रों को स्वीकार करना भी जेल के अधिकारियों के हाथ में नही होता और प्रायः यह प्रार्थना-पत्र स्वीकार नहीं किये जाते थे।

साथ ही यह न समझ लेना चाहिए कि 'ए' और 'बी' क्लास वालों को वे

सब सुविधाएँ प्राप्त थीं जो उन्हें मैनुएल के अनुसार मिलनी चाहिए। उन सुविधाओं के देना सर्वथा जेल के कर्मचारियों पर निर्भर होता था। किन्हीं जेलों में पर्याप्त सुविधाएँ और किन्हीं में बहुत कम। और कभी सुविधाएँ मिल भी गयीं तो कभी बन्द कर दी गयीं।

जब मैं पहले जेल में पहुँची तो मैंने लिखने के लिए कागज़ माँगा। 'ए' क्लास वालों को लिखने के लिए काग़ज़ मिल सकता है, पर मुझे, बहुत दिन तक बहुत सा झगड़ा बखेड़ा होने के बाद काग़ज़ मिला। एक बार तो जेलर ने मुझे यही सूचना भेज दी कि महीने में केवल दो बार ख़त लिखने को काग़ज़ मिलेगा और कोई काग़ज़ नहीं मिल सकता। परन्तु अन्त में मुझे लिखने के लिए एक कॉपी दे दी गयी।

पर साथ ही यह भी उचित ही होगा यदि मैं उस सुविधा का भी उल्लेख कर दूँ, जो जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल रहमान ने मुझे दी थी, जुलाई और अगस्त में मेरठ की गरमी का अनुमान किया जा सकता है। उन दिनों में मुझे बैठक के अन्दर बन्द कमरे में सोना पड़ता था। सुपरिण्टेण्डेण्ट को मेरे ऊपर दया आ गयी। उन्होंने मुझे घर से मिट्टी के तेल से चलने वाले पंखे को मँगाने की आज्ञा दे दी। यही एक विशेष कृपा का उदाहरण है, जो मुझे अपने जेल जीवन में प्राप्त हुई। यद्यपि उस पंखे से मुझे कोई लाभ नहीं हुआ; क्योंकि उसकी आवाज़ और बदबू से नींद में बाधा पड़ती थी और वह कभी भी अकस्मात् बन्द हो जाता था, इसलिये मुझे उसका उपयोग बन्द ही करना पड़ा।

'ए' क्लास में एक और भी कठिनता होती थी अतः हरेक चीज़ के लिये कह दिया जाता था कि अपने घर से मँगा लो। हम लोगों के लैम्पों में भी पर्याप्त तेल नहीं भरा जाता था।

हमारी बैरक में तो एक और भी विशेष कष्ट था कि जिस बैरक में हम लोग रहती थीं, उसमें कबूतरों के भी अनेक घर बने हुए थे। जिन लोगों ने 'सी' क्लास की बैरक देखी हैं। वे हमारी बैरक का अन्दाज़ कर सकते हैं, ऐसी बैरकों में घोंसला बनाने को बहुत स्थान रहते हैं। ऊपर शहतीरों और बीमों पर कबूतरों के घोंसले और ठीक उनके नीचे हमारे बिस्तर रहते थे। बैठने को कोई और जगह तो थी नहीं, बस हर समय हम लोगों को कबूतरों की बीटों का उपहार मिलता था। कभी किसी का घोंसला गिर पड़ा तो नीचे या तो हम और या हमारा बिस्तर तमाम तिनकों और फूटे हुए अण्डों से ख़राब हो जाते थे। कभी तो ठीक सिर के ऊपर

बीट आ-आ कर गिरती थीं। हम लोगों के सामान में से रज़ाई से लेकर पहनने तक कपड़ों में से कोई चीज़ ऐसी न थी जिसे हमें बीट की वजह से धोना न पड़ा हो। हम लोग पैरेड के दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट से बराबर कहते थे पर कोई फल न हुआ। इसी बीच में एक बार कलेक्टर साहब भी बैरक देखने आये मैंने उनको अपने कपड़े जो उनके आने से शायद दो या तीन मिनट पहले ख़राब हुए थे, दिखाये। कलेक्टर ने मुझसे कहा—हम अगर जेल ख़र्च में कुछ गुंज़ायश देखगें तो छत पर टाट या चटाई लग जायेगी।

लेकिन मेरे बाद में भी जो बहनें वहाँ रहीं, और जब वह अपनी क़ैद के दिन समाप्त करके वापिस आयीं तो मैंने उनसे यही सुना कि छत पर चटाई आदि कुछ नहीं लगी। यह तो 'ए' और 'बी' क्लास के रहने वालों की हालत थी, इसी से अनुमान किया जा सकता है कि बेचारे 'सी' क्लास वालों का क्या हाल होता होगा। मेरठ डिस्ट्रिक्ट जेल में रहने वाले 'सी' क्लास के भाइयों को अवस्था को ठीक नहीं तो कुछ-न-कुछ मैं जानती हूँ। प्रत्येक छोटी माँग को पूरा करवाने के लिए भूख हड़ताल की ज़रूरत होती थी। 'ए' और 'बी' क्लास वालों की भूख हड़ताल तो कुछ फ़ायदेमन्द भी रहती थी, पर 'सी' क्लास में भूख हड़ताल करना भी अपने मुँह से तनहाइयाँ बेड़ी माँगना होता था।

मुझे याद है, कि गढ़मुक्तेश्वर के मेले से, हर साल की तरह इस बार भी बीस-पचीस स्त्रियाँ मेले में से चोरी के सन्देह में पकड़ कर जेल में लायी गयी थीं। जेल के स्त्री वार्ड में एक ही पाख़ाना बना हुआ था; स्वभावतः उसमें गन्दगी बढ़नी थी। मैंने जेलर साहब से कहा—मेरे लिए एक दूसरा प्रबन्ध करवा दीजिए। लगातार चार दिन जब कहते हुए हो गये और कोई प्रबन्ध न हुआ तब अन्त में तंग आकर मैंने वार्डर के द्वारा जेलर साहब को कहलवाया—आज ही शाम तक कुछ न कुछ प्रबन्ध करवा दें नहीं तो मैं भूख हड़ताल निश्चय ही कर दूँगी। जिसके उत्तर में जेलर ने कहलावाया—"अगर आप ऐसा करेंगी, साहब आपको ट्रान्सफ़र कर देंगे।"

मैंने कहा— "अच्छी बात है, मैं अभी से भूख हड़ताल की सूचना देती हूँ।" जेलर को यकीन हो गया कि अवश्य ही भूख हड़ताल होगी। इसलिए उसी शाम को नये पाख़ाने का प्रबन्ध करवा दिया गया।

'ए' क्लास में होने का एक मात्र लाभ जो मुझे पता लगा सिर्फ़ यह था कि मैं महीने में दो बार पत्र लिख सकती थी और दो बार मेरी मिलाई होती थी। ख़ास

कर आरम्भ के तीन महीनों में जब मैं अकेली थी, मेरे लिये ये दोनों बातें अधिक महत्त्वपूर्ण थी।

सब बातों को देखते हुए मेरी यह निश्चित सम्मति है कि यह श्रेणी भेद हमारे लिये अत्यन्त हानिकारक और नैतिक दृष्टि से भी अनुचित है। शिक्षित लोगों के 'ए' और 'बी' क्लास में चले जाने के कारण 'सी' क्लास के क़ैदियों के कष्ट की कोई सीमा नहीं रहती और कई बार उनको, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भड़काया भी जाता है। यदि ऐसी हालत में यदि उनमें असंतोष हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

कहा जाता है कि जो लोग बाहर भिन्न-भिन्न स्थिति में रहते हैं यदि उन्हें जेल के अन्दर एक ही ढंग से रहना पड़े तो कितनी बड़ी कठिनता होगी। यदि 'ए' और 'बी' क्लास तोड़ दी जावे तो क्या ऊँची स्थिति में आराम से रहने वाले 'सी' क्लास में रह सकेंगे ? इन बातों का उत्तर तो स्पष्ट ही है। यदि सब लोग एक साथ एक ही रखे जायेंगे तो 'सी' क्लास वालों की दशा अब बहुत उत्तम होगी। उनके साथ जो पशुवत् व्यवहार किया जाता है वह असंभव हो जायेगा। एक भाव है जो कई बार मेरे मन में आता रहा है। कांग्रेस ऐसे स्वराज्य की कल्पना कर रही है जिसमे अमीर-ग़रीब का भेद्र भाव बहुत हद तक मिट जायेगा जिसमें अमीर-ग़रीब दोनों के खाने-पीने, रहने-सहने की समान सुविधाएँ प्राप्त होंगी। यदि जेल को स्वराज्य का मार्ग समझते हैं तो यह उचित नहीं कि जेल में हम भाई-भाई की इस समानता की एक झलक देख सकें ?

यह आवश्यक है कि कांग्रेस की ओर से श्रेणी भेद तोड़ने के लिये ज़बर्दस्त आंदोलन किया जावे।

15

जेल से मेरी मुक्ति

रोज़ सुनती थी कि, ज्वर आने के कारण मुझे शीघ्र छोड़ दिया जायेगा। पाँच महीने भी व्यतीत हो चुके थे। और यह भी सुना था, कि निवाड़ बुनने के कारण कुछ दिन की छूट भी मिलेगी, पर किस दिन छोड़ा जायेगा, इसका मुझे कुछ पता न था। एक दिन परेड के समय प्रातः ही मेरा हिस्टरी टिकट[1] माँगा गया। मैंने देखा उस पर मेरी रिहाई की तारीख़ दो जनवरी पड़ी हुई थी। उसे काट कर 6 जनवरी कर दी गई।

कौन ऐसा होगा, जिसे अपने घर जाने की आकांक्षा न हो, और अपने मित्र तथा सम्बन्धियों से मिलने की इच्छा न हो। मनुष्य का स्वभाव है कि वह कभी भी एक अवस्था में सन्तुष्ट नहीं रहता, अच्छी-से-अच्छी जगह में लगातार रह चुकने के बाद एक दिन ऐसा समय आता ही है जब उसी स्थान को छोड़ने के लिए व्याकुल होने लगता है और फिर अपना घर चाहे वह कितना भी बुरा हो। एक टूटा-फूटा झोंपड़ी ही हो, किसी महल में रहते हुए भी मनुष्य उसके लिये पागल हो उठता है।

यह कहावत है East or West, home is the best. उन दिनों यह मुहावरा मुझे इतना पसन्द था कि मैंने अपने तकिया के गिलाफ़ के एक कोने में भी इसे काढ़ ही डाला। मेरे सामने तो उस समय दुनिया का सबसे ज़्यादा खूबसूरत और प्यारी चीज़ों में मेरा घर था। एक देवता के मन्दिर की तरह मैं उसके दर्शन के लिए उत्सुक होने लगी। मैं सोचती कि मेरे छूटने के समय मुझे कैसे बुलाया जायेगा, मेरे मित्र, मेरे सम्बन्धी द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करते होंगे, मैं द्वार पर जाऊँगी, इस जेल की चारदीवारी के बाहर ! आह, तब मेरे साथ कोई सिपाही न होगा! मैं सड़कों पर बिना लाल पगड़ी वाले रक्षकों के घूम सकूँगी।

1. हरेक कैदी का 'हिस्टरी टिकट' उसकी जेल जीवन-चर्या के रुप में रखा जाता है जिसमे उनके काम का, दण्ड और बीमारी आदि का हाल अंकित किया जाता है।

कभी-कभी मैं सोचती कि मेरी हालत क्या उस चिड़िया से कुछ कम होगी जो पिंजड़े के अन्दर बन्द है और फिर भी वह उसी पिजड़े में घूम-घूम कर अपने बाग का, उसी घोंसले का जिसे उसने छोटे-छोटे तिनकों को कई दिन तक मुँह से उठा-उठा कर एक पेड़ की सूखी शाखा पर बनाया था। मार्ग खोजा करती है, पर क्रूर ब्याध उसे हर समय साँकल लगा कर अकेले छटपटाने के लिए छोड़ देता है, उस समय मुझे कवि इक़बाल का यह गीत याद आता था—

आता है याद मुझको, गुज़रा हुआ ज़माना।
वह झाड़ियाँ चमन की, वह मेरा आशियाना।।
वह साथ सब के उड़ना, वह सैर आसमाँ की।
ठण्डी हवा के पीछे, वह तालियाँ बजाना।।
अरमान है यह जी में, उड़कर चमन में जाऊँ।
टहनी से घुल के बैठूँ, आज़ाद हो के गाऊँ।।
बेरी की शाख़ पर हो, वैसा ही फिर बसेरा।
उस उजड़े घोंसले को, फिर जाके मैं बसाऊँ।।

आख़िर वह दिन भी आया लेकिन मैं बेख़बर थी, क्योंकि मुझे तो छः तारीख़ की इन्तज़ार थी। पर उस दिन तो तीन ही तारीख़ थी, मैं ही क्यों शहर के लोग और यहाँ तक कि मेरे घर वाले भी इससे अनभिज्ञ थे।

बहन कमला जी बीमार थीं। कोई 9 बजे होंगे, हमारी बैरक के सामने धूप आ गयी थी वही उनका बिस्तर बिछाकर मैंने उन्हें लिटाया ही था, कि द्वार खटका। द्वार खोल कर ज़मादार ने अपने पुराने ढंग से कहा—"ऊर्मिला जी चलिए।" बीमार रहने की वजह से मैं सप्ताह में इसी दिन प्रायः इसी समय पर हस्पताल जाया करती थी। पर आज 11 दिन हो गये थे, मेरे कहने पर भी मुझे हस्पताल नहीं भेजा गया। मैंने समझा, वहीं के लिये बुला रहे हैं। मैंने कहा—जब मुझे तकलीफ़ थी, तब तो भेजा नहीं। आज मैं नहीं जाती; अब तो एक बार घर जाने के लिये ही बैरक से बाहर निकलूँगी। वार्डर ने कहा—हाँ, घर के लिए ही तो बुला रहा हूँ। मुझे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। मेरी बहनों ने एक साथ कहना शुरू किया—"लो, आज तुमने हमारा साथ छोड़ दिया..."

वार्डर ने कहा, जल्दी करिए आपका नौकर दरवाज़े पर खड़ा है। मैं और भी हैरान हुई; क्या सारे घर में से मेरा नौकर ही मुझे लेने को आया है। मैंने धड़कते

हुए दिल के साथ उससे पूछा कि क्या और कोई नहीं आया ? वार्डर ने कहा, कोई नहीं और वह नौकर भी तो आपके मैले कपड़े लेने आया था। उसे भी यह क्या पता था कि आज आप छूटेंगी। पर साहब ने कहा कि आपको आज ही छोड़ दिया जावे।

पूरे साढ़े पाँच मास जिस बैरेक में, जिन दीवारों के भीतर व्यतीत किये थे, जहाँ आधी गर्मी, पूरी बरसात, और उसके बाद आधे जाड़े के दिन व्यतीत किये थे, वहाँ अब मुझे घड़ी भर भी खड़े होने की आज्ञा नहीं थी। मुझे पता नहीं किस तरह मेरा बिस्तर और बक्स बन्द हो गया। हाँ, मुझे याद है ठीक दस मिनट के अन्दर ही एक और व्यक्ति भी यही सन्देश देने मेरे पास आ पहुँचा। मेरी बहनों ने हँसते-हँसते मुझे विदा किया। मैं बैरक से बाहर द्वार तक आयी। सिपाही और वार्डरों से घिरा हुआ बड़ा लोहे का द्वार बन्द था। हाँ, बाहर मेरा नौकर गोबर्धन खड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। वार्डर ने कहा, "आप दफ़्तर में चलिए। साहब बुला रहे हैं।" वार्डर के साथ मैं ऊपर दफ़्तर में पहुँची।

सुपरिण्टेण्डेण्ट ने पूछा—क्या हाल है ?

मैंने कहा—अच्छा है।

सुपरिण्टेण्डेण्ट—आज आप बाहर जायेगा ?

मैंने कहा—जी हाँ, ख़ैर देखें फिर कब इधर आना हो।

आश्चर्य से सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा—क्या बोला, फिर आइएगा इधर जेल में?

मैंने नीचे उतरते हुए कहा—शायद...

मैं नीचे चली आयी, मेरे साथ ही नायब जेलर भी उतर आया। मुझसे कहा गया।—अभी यही ठहरे, सामान चैक होने के बाद आपको जाना होगा। जेल के कर्मचारी आते और उधर से निकल जाते। लगभग एक घण्टा खड़े रहने के बाद तंग आकर मैंने नायब जेलर से कहा कि अगर आपको अभी फ़ुर्सत नहीं तो मुझे फ़ीमेल वार्ड में भेज दिया जावे, जब ख़ाली होंगे तब देख लेना। मैं कह ही रही थी, तभी दफ़्तर का काम ख़त्म करके सुपरिण्टेण्डेण्ट नीचे उतरे। मुझे इस तरह खड़े देखकर उन्होंने जेलर से कहा—इन्हें जाने क्यों नहीं दिया जाता? जेलर ने कहा—अभी इनका सामान देखा जायेगा। सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास पड़ी एक कुर्सी की ओर इशारा करके कहा—आप यहाँ बैठ जाइए। इतना कहकर सुपरिण्टेण्डेण्ट तो चले गये। जेलर ने मेरा सामान अपने दफ़्तर में मँगा लिया। एक नम्बरदार ने मेरा बिस्तर खोला, दूसरे

ने बॉक्स, प्रत्येक चीज़ को कई बार झाड़-झाड़ कर देखा गया। वहाँ था ही क्या जो नज़र आता। मेरे पास प्रोफ़ेसर जी की और एक छोटी लड़की की तस्वीर थी। इसके अतिरिक्त जेलवालों के द्वारा आई हुई प्रोफ़ेसर जी की चिट्ठियाँ थी। वह सब चिट्ठियाँ और चित्र मेज़ पर रखवा लिये गये।

मेरे पास एक और कॉपी भी थी, जिस पर कभी मैं कुछ लिख लिया करती थी। किसी पुस्तक में कोई ख़ास नोट करने योग्य बात मैं इसी कापी में नोट कर लेती थी। पर उसमें कोई ऐसा साहित्य न लिखा गया था, जो बाहर जाने लायक़ न हो। अधिकतर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ही उद्धरण लिखे हुए थे, और वह भी शायद आठ-दस पृष्ठों से ज़्यादा न होंगे। अधिकतर उस कॉपी के पृष्ठ अर्जी लिखने का काम देते थे, पर शायद मुझे तंग करने के लिए वह भी मेज़ पर रखवा ली गयी। पूरे एक घंटे या उससे भी अधिक समय में मेरी तलाशी का खेल समाप्त हुआ। चित्र तो चुपचाप वापस कर दिये गये, पर पर्चों को देने से जेलर ने इनकार कर दिया। मैंने उसका कारण पूछा—तो जेलर ने कहा—आपको इन्हें सम्भाल कर न रखना चाहिए था।

मैं बड़ी हैरानी में पड़ गयी। पर्चों पर सुपरिण्टेण्डेण्ट के हस्ताक्षर थे और वे पत्र जेल के द्वारा ही आये थे। आज उन्हें रोकने का मतलब क्या था? नियमानुसार पत्र रोकने का इस समय जेलर का कोई हक़ नहीं था, पर जेलर ने बार-बार यही कहा कि "साहब से पूछकर पत्र लौटाए जावेंगे।"

मैं बड़ी कठिनता में पड़ गयी। पत्र मिल नहीं रहे थे और मेरे दिल पत्रों को छोड़ घर जाने को चाह नहीं रहा था। ये वही पत्र थे, जिनका मैंने एक धार्मिक पुस्तक के स्वाध्याय की तरह जेल में रोज़ पाठ किया था। मेरे जेलवाले घर की यही तो बहुमूल्य सम्पत्ति थी।

जेलर ने कहा, ''आप फिकर न करें, मैं इन्हें सँभाल कर रखूँगा। और यदि साहेब आज्ञा दे देंगे, तो आप को भेज दिये जावेंगे, नहीं तो यकीन रखें, मैं इन्हें जला दूँगा।'' अन्ततः मुझे पत्र वहीं छोड़कर दफ़्तर से बाहर आना ही पड़ा। पूरे साढ़े ग्यारह बजे जेल का बड़ा फाटक खुला। जेलर ने कहा, ''अच्छा मिसेज़ शास्त्री, हमारी ग़लतियाँ माफ़ करना।'' जेलर भी मेरे साथ दरवाज़े तक बाहर आये। द्वार के बाहर एक ताँगा खड़ा था। जेलर ने कहा—इस ताँगे पर सामान रखकर आप जा सकती हैं। एक ताँगा उसी पर पलंग, बक्स, बिस्तर और मैं सब कैसे जाते?

संयोगवश उसी समय एक शहर की गाड़ी आ पहुँची। मैं उसी में बैठ गई। जेलर ने कहा—"खुदा हाफ़िज !"

मेरी गाड़ी घर की ओर चल दी। रास्ता वही था, जिसे बन्द लारी में आठवें दिन हस्पताल जाते हुए कई बार देखा था। पर आज उसमें एक नवीन सुन्दरता और आकर्षण दिखाई देने लगा। मैं बाहर की ओर देखकर सोचती थीं कि क्या सचमुच मैं घर की ओर जा रही हूँ। जेल की तरफ़ से बिस्तर और खाट सहित आती हुई गाड़ी दूसरे ही लोगों की उत्सुकता पैदा कर रही थी। लोग दुकानों से उचक-उचक कर देखने लगे। कइयों ने पहचाना, एक ने चिल्लाकर कहा, "उर्मिला जी छूट गईं !" एक लॉरी में कुछ यात्री चढ़ रहे थे, उन्होंने घूमकर देखा—। एक ने कहा, "बहन जी नमस्ते।" सीधी सड़क पर आ जाने से दूर से ही घर का बरामदा दीखने लगा, मैंने देखा, उसमें कुछ लोग खड़े हैं। बरामदे पर दृष्टि पड़ते ही मेरा हृदय उमड़ने लगा, मानो वह मेरे शरीर से निकल कर आगे बढ़ना चाहता हो। न जाने कितने भावों ने मुझे दबा लिया। मुझे पता न चला कि वह हर्ष था या क्षोभ चिन्ता थी, या उत्सुकता। वह न जाने कौन किस प्रकार का हृदय का अनिर्वचनीय भाग था ? मैं क्षणभर के लिये बेसुध हो गयी, स्तब्ध-सी रह गयी। पाँच मिनट बाद मैंने देखा कि मैं उसी कमरे में बैठी हूँ, जहाँ छः मास पूर्व जेल जाने के लिए मेरा सामान तैयार किया जा रहा था।

❐ ❐

श्रीमती ऊर्मिला देवी शास्त्री लिखित *कारागार* एक ऐसी-कृति है जो भारत-स्वातंत्र्य संग्राम में अपना सर्वस्व निछावर करनेवाली महिला के अन्यतम योगदान से समृद्ध है। इसमें एक खाते-पीते परिवार की युवा क्रांति-सेनानी के महात्मा गाँधी द्वारा छेड़े गये स्वतन्त्रता संग्राम के पथ पर बढ़ने के आह्वान पर घर छोड़ने और क्रान्ति के अग्नि-पथ पर चलते हुए तमाम कठिनाइयों को झेलने और अन्त में कारा-यंत्रणा से जुड़ी त्रासदी को हँसते हुए गले लगाने का एक अद्‌भुत आनंद भी निहित है। जीवन के कटुतम अनुभवों से जूझते हुए तथा देश के लिए अपने जीवन को धन्य करते हुए और उन्हें प्रामाणिक रूप से लिपिबद्ध करते हुए **श्रीमती ऊर्मिला देवी शास्त्री** ने अनुपम धैर्य का परिचय दिया था। बाद में उनका यह अनुभव पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुआ, जिसकी भूमिका श्रीमती कस्तूर बा गाँधी ने लिखी थी। अब वह कृति अप्राप्य है। साहित्य अकादेमी को हर्ष है कि देश की स्वतन्त्रता की पचासवीं वर्षगाँठ पर वह कृति पुनः प्रकाशित की जा रही है।

हमें आशा है कि हमारी वर्तमान पीढ़ी और विशेषकर महिलाएँ, **श्रीमती ऊर्मिला शास्त्री** द्वारा लिखित इस रचना से प्रेरणा ग्रहण करेंगी। जिन मूल्यों के लिये हमारे पुरखों ने अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दिया था, वे आज अधिक प्रासंगिक हैं क्योंकि जिन क़ुर्बानियों की बुनियाद पर हमें आज़ादी प्राप्त हुई है—उन्हें किसी कीमत पर भुलाया नहीं जा सकता। उसका स्मृति-तर्पण कर हमें स्वयं को कृतार्थ समझना चाहिए।

पूर्व-पुस्तक का प्रकाशित रूप जहाँ तक संभव है, अविकृत रखा गया है। पाठक इसमें कारा जीवन के विचित्र अनुभवों तथा लेखिका की अविचलित देशभक्ति के साथ ही तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा महिला-क़ैदियों को दी जा रही यातनाओं की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे।

Library IIAS, Shimla
H 813.3 Sh 24 K
00094248

ISBN : 81-260-0440-1

मूल्य : 45 रुपये

आवरण : इन्द्रजीत सिंह